सोमसी

हिमाचल कला - संस्कृति · भाषा अकादमी शिमला - १

1/80

tharahkardu.in

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 6 | जनवरी, 1980 | अंक 1

मुख्य सम्पादक :
अध्यक्ष अकादमी
शिव कुमार उपमन्यु

सम्पादक :
मौलू राम ठाकुर

सहयोगी :
सरोज सांख्यायन

आवरण :
तिलक राज

२१

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य।

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परी महल, शिमला-171009

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय		*(i)*
2.	ताबो मठ –एक और अजन्ता (एक ऐतिहासिक तथा कलात्मक सर्वेक्षण)	–डा० विश्व चन्द्र	1
3.	महासुई लोक-गीतों में शक्ति पूजा	–प्रो० हरिराम जस्टा	9
4.	गदेरन (गदयार क्षेत्र) का जात्रा उत्सव	–श्री अमरसिंह रणपतिया	18
5.	हिमाचल की लघु अजन्ता—नाको मठ	–श्री छेरिंग डुगे ठाकुर	30
6.	हिमाचल लोक जीवन में ऋतु-दर्शन	–श्री हरिकृष्ण मुरारी	33
7.	शिमला क्षेत्र के देसी राज्यों में विरोध-प्रदर्शन	–श्री पी० एन० सेमवाल	37
8.	निरमण्ड—जहां नरमेध यज्ञ होता था	–श्री सुदर्शन वशिष्ठ	43
9.	सिरमौरी लोक नृत्यों का वर्ष की ऋतुओं से सम्बन्ध	–श्री विद्यानन्द सरैक	47
10.	स्पिति के गोम्पे	–श्री बलराम आई०ई०एस०	52
11.	कांगड़ी लोक-गीतों में श्री कृष्ण का स्थान	–श्रीमती सुदर्शन डोगरा	58
12.	पर्वतीय राज्यों में सत्याग्रह का स्वरूप तथा इतिहास	–श्री रूप कुमार शर्मा	66
13.	अन्तराष्ट्रीय बाल वर्ष—चित्र कला प्रतियोगिता तथा बाल-लेखक गोष्ठी	–विद्या शर्मा	70
14.	बाबा गणेशसिंह वेदी कृत चमत्कार चिन्तामणि	–डा० मनोहर लाल	81
15.	लोक-नाट्य एवं नृत्य कार्यशाला का आयोजन	–श्री अशोक हंस	91
16.	हमारे साहित्यकार—स्वर्गीय श्री विजयकुमार पण्डित	–श्री प्रेमकुमार शर्मा	95
17.	पुस्तक समीक्षा —**श्यामला**	–श्री अश्विनीकुमार अवस्थी	97

●★●

सम्पादकीय

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के उत्खननों से प्राप्त सामग्री की लिपि के अध्ययन में जब कभी सफलता मिलेगी तो प्राचीन भारतीय संस्कृति और भाषा से सम्बन्धित अनेक रहस्यों की गुत्थियां सुलझ जाएंगी। इतना तो स्पष्ट हो ही चुका है कि आर्यों के आगमन से पहले भारत देश एक उत्कृष्ट सभ्यता और संस्कृति का स्वामी था और आर्य लोगों पर उसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। यह बात ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं से पुष्ट हो जाती है जिनमें आर्य से पूर्व उच्च कोटि की संस्कृति का प्रदर्शन होता है। वेदों के अनुसार आर्यों को दास या दस्यु जाति से बड़ा लोहा लेना पड़ा था। जिनकी संगठनात्मक शक्ति बड़ी प्रबल थी। सप्त सिंधु क्षेत्र के इन मूल निवासियों के अनेक लक्षण द्रविड़ों से मेल खाते हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

प्राचीन समय से लेकर भारत में अनेक जातियों ने क्रमिक रूप से प्रवेश किया है। भारत में सबसे पहले आने वाले विदेशी अफ्रीका के नीग्रो थे, परन्तु भारत के मूल-निवासियों से निकृष्ट होने के कारण इनकी भाषा या संस्कृति यहां विकसित या स्थायी न रह सकी। सुप्रसिद्ध भाषा शास्त्री डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के अनुसार, तत्पश्चात् भू-मध्य सागर के आस-पास से प्राटो-आस्ट्रालाइड जाति के लोग भारत में आए। संथाल, गोंड, भील, कोल और मुण्डा वर्ग की भाषाओं में इनकी भाषाओं के प्रभाव अब भी विद्यमान हैं। डा० चैटर्जी के अनुसार लाहुल और किन्नौरी आदि भाषाओं में इस जाति की भाषा की कुछ विशेषताएं विद्यामान हैं। इस जाति के लोगों को बाद में आर्यों ने निषाद कहा है। इनके बाद भारत में आने वाले विदेशी भूमध्य सागर के तट के निवासी थे, जो यहां द्रविड़ कहलाए, और दक्षिण भारत के द्रविड़ भाषा भाषी इन्हीं की संतान मानी जाती है। द्रविड़ लोग नीग्रो तथा प्राटो-आस्ट्रालाइड से अधिक सुसभ्य और विकसित थे। यह बात उनके स्थायी प्रभाव से प्रकट होती है। द्रविड़ों के बाद मंगोल जाति के लोग भारत में आए, जो चीनी तिब्बति वर्ग की भाषा बोलते थे, परन्तु इनका प्रभाव उत्तर भारत के पर्वतीय क्षेत्र तक सीमित रहा।

इस प्रकार आर्यों के भारत में आने पर उन्हें भारत के मूल निवासियों के साथ-साथ उपर्युक्त बाहर से आई जातियों की भाषाओं के साथ भी सम्पर्क स्थापित करना पड़ा। परन्तु आर्यों की भाषा अत्यन्त विस्तृत और समृद्ध थी, और परिणाम स्वरूप वह अन्य सभी भाषाओं पर छा गई। परन्तु आर्य भाषा के सर्वव्यापी होने के बावजूद भी भारत की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में हर स्थान पर कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जो हमें आर्य भाषा के किसी भी प्राचीन रूप में उपलब्ध नहीं होती। द्रविड़, मूण्डा, तिब्बती-बर्मी तथा आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार की भाषाएं तो स्पष्ट रूप में भारत की आदिवासियों की भाषा के भण्डार के रूप से आज तक सुरक्षित, प्रचलित तथा विकसित होती चली आई हैं, जिन पर आर्य भाषा का प्रभुत्व अधिकार नहीं जमा सका है। परन्तु इन भाषाओं के अतिरिक्त अन्य जिन आधुनिक भारतीय भाषाओं को आर्य भाषा का रूप माना जाता

है उनमें भी कई ऐसी ध्वन्यात्मक, व्याकरणीय तथा शब्दकोशीय विशेषताएं हैं जो आर्य भाषा में उपलब्ध नहीं थीं। डा० ग्रियर्सन और डा० चटर्जी आदि विद्वानों का मत है कि जम्मू-कश्मीर के भद्रवाह से लेकर नेपाल के पूर्व तक के उप-हिमालय क्षेत्र की भाषाओं का अपनी निकट पड़ौसी भाषाओं पंजाबी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी और बिहारी के साथ कोई विशिष्ट सम्बन्ध नहीं है, परन्तु राजस्थान की भाषाओं के साथ इनका बड़े निकट का साम्य है। इसका प्रमुख कारण राजस्थान और उप-हिमालय क्षेत्रों के पूर्वजों का एक जाति से सम्बन्धित होना है। डा० ग्रियर्सन आदि विद्वानों का मत है कि उप-हिमालय के क्षेत्र में आने वाले सबसे पहले विदेशी खश थे जो सम्भवत: मध्य-एशिया के रहने वाले थे। उनके बाद इस क्षेत्र में गूजर लोग आए, जिन्होंने छठी-सातवीं शताब्दी में उसी क्षेत्र पर आक्रमण करके कब्जा किया जहां पहले खश आए थे। इन गूजरों में से अनेकों ने कृषि और पशुपालन का धन्धा अपनाया और यहां के मूल निवासियों के साथ समाविष्ट और एक रूप हो गए। परन्तु खशों, मूल-निवासियों और गूजरों के कुछ समूह युद्ध-प्रिय हो गए। इन्हें ब्राह्मणों ने क्षत्रिय में स्थान दिया। इस रूप में इन्होंने सपादलक्ष से दक्षि और दक्षिण-पश्चिम की ओर आक्रमण किया और विजय होने पर राजपूतों के नाम पर राजपुताना और गूजरों के नाम पर गुजरात राज्य स्थापित किए।

गूजर लोग निस्सन्देह बाहर से आए हैं। परन्तु खशों के बारे में अभी निश्चय में नहीं कहा जा सकता कि वे यहां के मूल निवासी थे या बाहर के आक्रमण कर्ता। परन्तु इतना निश्चित है कि सपादलक्ष क्षेत्र में पहले विभिन्न जातियों का समावेशन हुआ तथा बाद में यहीं से इन जातियों ने दक्षिण की ओर आक्रमण किये, और राजपुताना तथा गुजरात आदि राज्यों को बसाया। ये आक्रमण सिन्ध के मार्ग से हुए हैं, पंजाब के पश्चिमी भाग और गंगा नदी क्षेत्र यहां के मूल निवासियों के गढ़ थे जिनके साथ लोहा लेने में सम्भवत: सफलता न हुई हो। इसीलिए पहाड़ी और राजस्थानी भाषा में साम्यता है। ये सभी विषय शोध की अपेक्षा रखते हैं।

—एम०आर० ठाकुर

ताबो मठ–एक और अजन्ता
(एक ऐतिहासिक तथा कलात्मक सर्वेक्षण)

—डा० विश्व चन्द्र

स्पिति घाटी में ताबो गांव एक प्राचीन तथा विस्तृत मठ के लिए प्रसिद्ध है जो कि बौद्ध विषय-वस्तु पर उत्कृष्ट भित्ति-चित्रों से अलंकृत है। मठ का निर्माण दसवीं शताब्दी के अन्त अथवा ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में किया गया था। ताबो गांव सतलुज की एक सहायक नदी स्पिति के बाएं किनारे पर मैदान के लम्बे भू-भाग पर स्थित है। सम्भवत: स्पिति उप-मण्डल का नाम इसी नदी से लिया गया है जो कि इस सारे क्षेत्र में से बहती है। एक काफी बड़ा नाला जिसे ताबो नाला के नाम से जाना जाता है, स्पिति नदी में मिलता है जिस के नीचे ताबो गांव बसा है। इस नाले से वहां खेतों के लिए सिंचाई की सहज सुविधाएं उपलब्ध हैं। इस क्षेत्र में बिना सिंचाई के किसी भी वनस्पति आदि की पैदावार नहीं हो सकती। अत: ताबो नाला गांव के लिए विशेष महत्व रखता है। नंगी पहाड़ियों से घिरा हुआ तथा हिमालय की भीतरी पहाड़ियों में स्थित समुद्र तल से ग्यारह हजार फुट से भी अधिक ऊंचाई पर बसे इस स्थान पर बहुत ही कम वर्षा होती है तथा बर्फ प्राय: हल्की ही पड़ती है। इस प्रकार यहां की जलवायु बहुत शुष्क है जो कि मठ में भित्ति-चित्रों के परिरक्षण के लिए अत्याधिक सहायक है। सभी भित्ति-चित्र जिनमें से कि कुछ तो लगभग एक हजार वर्ष पुराने हैं अब भी काफी अच्छी स्थिति में परिरक्षित है परन्तु यहां एक कठिनाई अवश्य है। यहां की सूखी मिट्टी रेतीली और अदृढ़ है तथा आसानी से वायु के साथ उड़ जाती है अथवा कभी अन्य कारणों से भी अस्त-व्यस्त हो जाती है और सभी जगह फैल जाती है जिस से मठ में भित्ति-चित्रों तथा अन्य कला-वस्तुओं पर बुरा असर होता है।

एक प्रचलित परम्परा के अनुसार लामा रिन-चैन-संग-पो जिनका भारतीय नाम रत्न भद्र था (सन् ई० ९५६–१०५४) ने ताबो मठ तथा गु-गे राज्य और लद्दाख सहित निकटवर्ती क्षेत्र के कई अन्य मठों की स्थापना की थी। कुछ दशक पहले इस विद्वान भिक्षु की आत्म कथा के प्राप्त होने पर यह तथ्य सिद्ध हो चुका है। इस सूत्र से हमें यह भी पता चलता है कि वह गु-गे राज्य का निवासी था।

दसवीं शताब्दी में पश्चिम तिब्बत तथा निकटवर्ती क्षेत्रों में कई रियासतें थी तथा उनमें से एक (जो कि इस लेख के विवेचन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है) गु-गे का राज्य था। वास्तव में गु-गे एक भौगोलिक नाम है जो दक्षिण-पश्चिमी तिब्बत में नाग्र-विस जिले में पड़ने वाले एक क्षेत्र को निर्दशित करता है। कला इतिहासकार गु-गे शब्द को दसवीं शताब्दी से सतारहवीं शताब्दी के मध्य तक एक काल को निर्दशित करने के लिए भी प्रयुक्त करते हैं जिस काल के दौरान यह राज्य

अस्तित्व में रहा है। इसके अतिरिक्त यह शब्द कुछ कलात्मक शैली सम्बन्धी परम्पराओं को भी निर्दशित करता है जो कि उस क्षेत्र में प्रचलित थीं। दसवीं शताब्दी में गु-गे के राज्य पर चान-पोखोर-रे राज्य करता था जो कि ये-शेस-ओद के अन्य नाम से भी जाना जाता है जो उसका धार्मिक नाम था। इस याजक राजा ने कई प्रकार से सक्रिय रूप से बौद्ध धर्म को पुनर्जीवित किया। वह उस परिवार में से था जो कि जम्मू और काश्मीर राज्य में जांस्कर से आया था। जांस्कर क्षेत्र उन्नसवीं शताब्दी के मध्य तक चम्बा राज्य का ही एक भाग था। गु-गे के राजा चान-पोखोर-रे ने बौद्ध धर्मग्रन्थों के अध्ययन तथा अनुवाद के लिए अपने राज्य से कुछ विद्वान भारत (काश्मीर तथा मध्य भारत) भेजे। इक्कीस में से केवल दो विद्वान ही भारत की गर्म जलवायु को सहन कर सके और अपना लक्ष्य पूरा होने के पश्चात् वापस आए। उनमें से एक सुप्रसिद्ध विद्वान रिन-चैन-संग-पो था जिस का ऊपर उल्लेख किया गया है। हमें उसकी आत्म-कथा से पता चलता है कि वह अध्ययन के लिए कुछ समय विक्रमशीला में भी रहा था। इसी आत्मकथा से हमें एक और महत्वपूर्ण सूचना भी मिलती है कि रिन-चैन-संग-पो ने काश्मीर से बत्तीस बौद्ध कलाकारों की सेवाएं प्राप्त की तथा उनमें सबसे श्रेष्ठ कलाकार का नाम विधिक था, उन्होंने गु-गे राज्य तथा पास के क्षेत्र के अन्य प्रदेशों में कार्य किया। इस विद्वान ने गु-गे के राजाओं के संरक्षण में बहुत से मठ स्थापित किए। सबसे पहले तीन मुख्य मठ—पुरंग में खो-चार का, गु-गे में मथो-ग्लिन (अथवा लदिन) का, तथा लद्दाख में नर-मा का, निर्मित किए गए[1]। उस क्षेत्र में धर्मोत्साह तथा कला गतिविधियां इतनी विकसित हुईं जो और अधिक मठों की स्थापना का कारण बनी। सही-सही सूचना उपलब्ध नहीं है कि ताबो मठ कब स्थापित किया गया था। तिब्बती ऐतिहासिक परम्पराओं के अनुसार[2] रिन-चेन-संग-पो भारत में अध्ययन करने के पश्चात् सन् ई० ९७८ में गु-गे में वापस पहुंचा था। यद्यपि यह सम्भव है कि बाद में उसने अध्ययन के लिए भारत की और यात्राएं भी की होंगी परन्तु भित्ति-चित्रों के अध्ययन और उनकी शैली के विश्लेषण से इस धारण की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है कि इस क्षेत्र में कुछ मठ सन् ई० ९७८ के पश्चात् स्थापित होने आरम्भ हो गए होंगे। जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है इस विद्वान भिक्षु द्वारा कई मठों की स्थापना की गई थी और भित्ति-चित्रों की शैली में कुछ समानता होते हुए भी सूक्ष्म भिन्नता दिखाई पड़ती है जिस का कारण यही हो सकता है कि इन मठों की स्थापना में कुछ समय का अन्तर है। ताबो मठ के मुख्य हाल में दीवार पर एक अभिलेख में जो इसकी स्थापना के छयालीस वर्ष पश्चात् लिखा गया था, इस मठ में की गई मुरम्मतों के बारे में उल्लेख है। प्राचीन तिब्बती लिपि में लिखे गए इस लेख में कोई तिथि नहीं है परन्तु नीचे विवेचित कई नाम इसमें मिलते हैं और यद्यपि इस मठ की स्थापना की तिथि के बारे में सुनिश्चित नहीं हो सकते तो भी इसका प्रारम्भिक निर्माण सन् ई० १००४ में अथवा इससे पहले ही माना जा सकता है। इससे पहले कि ताबो के मठ से सम्बन्धित अन्य विवरणों का उल्लेख किया जावे, इस मठ की स्थापना के लिए उत्तरदायी स्थितियों को समझने के प्रयोयन से इस क्षेत्र के इतिहास और अन्य तथ्यों का जानना आवश्यक है।

1. Memoirs of the Archaeological Survey of India, No. 39 p. 1.
2. T.W.D. Shakabpa, Tibet : A Political History, Lodon, 1967 p. 56.

गु-गे लद्दाख का एक करद राज्य था और इन दोनों राज्यों के मध्य संचार-व्यवस्था विद्यमान थी। गु-गे से लद्दाख का मार्ग स्पिति घाटी तथा लाहौल से गुजरता है। यद्यपि रास्ते में पन्द्रह हजार फुट ऊंचाई वाला दर्रा पार करना पड़ता है फिर भी सर्वजन इसी मार्ग को तरजीह देते थे क्योंकि इसका फासला बहुत कम था और अधिक ऊंचाई पर रहने वाले लोगों को दूसरा मार्ग जलवायु की दृष्टि से भी प्रतिकूल लगता था। इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रों के बीच जो कुछ भी पुण्य का आदान-प्रदान किया जाता था, उसको यदि घनी आबादी वाले निचले क्षेत्र से लाया जाता तो उस पर अधिक कर देने पड़ते तथा प्रायः वे क्षेत्र सुरक्षित भी नहीं थे। लद्दाख का स्पिति के लोगों के बीच सम्पर्क मौजूद होने का एक अन्य महत्वपूर्ण व दिलचस्प प्रमाण भी कला के अध्ययन से हमें उपलब्ध होता है, किन्नौर व स्पिति से कांस्य की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जो कि शैलीगत तथा मूर्तिशिल्प दोनों ही विशेषताओं में लद्दाख की मूर्तियों के अधिक निकट है। इनके कुछ नमूने राज्य संग्रहालय, शिमला में परिरक्षित हैं।

हम यह भी जानते हैं कि उन्नसवीं शताब्दी के मध्य तक स्पिति जम्मू और काश्मीर राज्य में लद्दाख के मण्डल का भाग रहा। क्योंकि लम्बी दूरी के कारण इसे जम्मू श्रीनगर से संन्तोषजनक ढंग से शासित करना सम्भव नहीं था इसलिए इसे अंग्रेजों ने उस राज्य से अलग करके इसे वर्ष १८४७ में कुल्लू उप-मण्डल में सम्मिलित कर दिया था। सीमान्त क्षेत्र होने के कारण इसके सामरिक महत्व को दृष्टिगत लाहौल-स्पिति को प्रथम अप्रैल १९६० से एक अलग जिला सर्जित किया ताकि इसे उचित ढंग से शासित व विकसित किया जा सके।

स्पिति उप-मण्डल में द्रंगखार (द्रंखर) अपनी अनुकूल तथा सुरक्षित स्थिति के कारण वहां का मुख्यालय रहा। इस स्थान पर भी एक प्राचीन मठ है, तथापि ताबो सड़क पर स्थित तथा कुछ अन्य सुविधाओं के कारण सदैव ही द्रंगखार की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण रहा। ताबो इस मार्ग पर गु-गे तथा लद्दाख के बीच विराम-स्थान के लिए इस्तेमाल होता था क्योंकि यहां विस्तृत कृषि योग्य भूमि तथा पर्याप्त सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध थी। सम्भवतः ताबो गांव का नाम ता-फो का ही विकृत रूप है। स्थानीय भाषा में घोड़े को ताफो कहते हैं। स्पिति घाटी में अभी तक इसके अपने विशेष घोड़ों की नस्ल है जो कि अधिक ऊंचाई तथा कठिन और चट्टानी क्षेत्र के लिए उपयुक्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि तब ताबो गांव घोड़ों के प्रजनन तथा प्रदाय के लिए एक प्रसिद्ध केन्द्र था जो कि काफिलों तथा सेना के लिए अपेक्षित थे। वहां मठ की दीवारों पर चित्रित छोटे कद के घोड़ों की स्थानीय नस्ल को अब भी हम देखते हैं।

ताबो का मठ जो कि दशवीं शताब्दी के अन्त तक स्थापित किया गया था, प्रसिद्ध भारतीय विद्वान अतीश, जिनका तिब्बती नाम जो-बो-रजे था, (सन् ई० ९८२-१०५४) भी वहां आए थे। अतीश राज-परिवार से थे जिन्होंने बहुत कम आयु में बौद्ध भिक्षु बनने के लिए सांसारिक सुखों को त्याग दिया था। असाधारण विद्वता से युक्त यह भिक्षु सन् ई० १०४२ में जब वह साठ वर्ष के थे, गु-गे गए। गु-गे राजा को अतीश को अपने राज्य में लाने के लिए लम्बे समय तक प्रयास तथा अनुरोध करना पड़ा जो कि अपने आप में एक दिलचस्प वृतान्त है, रिन-चेन-संग-पो (रत्न भद्र) जिन्होंने भारत में बहुत से स्थानों पर तथा लगभग बावन गुरूओं के निर्देश में अध्ययन किया था, तब पच्चासी वर्ष के थे जब गु-गे में उनकी अतीश से भेंट हुए थी। वह स्वयं को पहले ही सभी

धर्मों में, सामान्य तथा गूढ़, दोनों में ही प्रवीण समझते थे तथा इसलिए उन्होंने यह महसूस किया कि अतीश, एक और नए गुरू से अब और अधिक ज्ञान प्राप्त करने की कोई सम्भावना नहीं थी। तथापि, शिष्टाचार के नाते उन्होंने अतीश के लिए कुछ सम्मान दिखाया क्योंकि अतीश राज-परिवार के अतिथि थे। अतीश की गहन विद्वता तथा व्यवहार ने धीरे-धीरे रिन-चेन-संग-पो को अत्याधिक प्रभावित किया और उनके मन में अतीश के प्रति जो उपेक्षा का भाव था वह सम्मान व श्रद्धा की भावना में बदल गया। उन्होंने स्वेच्छा से अतीश के अनुवाद के कार्य में सहायता की। अतीश द्वारा रचित बौद्धि-पाठ-प्रदीप भी रिन-चेन-संग-पो ने अनुदित किया। अतीश ने कई धर्मग्रन्थों के अनुवाद किए। इनके अतिरिक्त उनके अपने रचित ग्रन्थों को चार मुख्य वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

(क) तन्त्र वर्ग
(ख) प्राज्ञपारमिता
(ग) माध्यमिक वर्ग तथा
(घ) वृतान्त (टीका)

अतीश गु-गे व तिब्बत में बुद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए बारह वर्ष रहे तथा वहीं पर सन् ई० १०५४ में उनका देहान्त हुआ। गु-गे तथा निकटवर्ती क्षेत्रों में इस महान् गुरू का कार्य तथा यह तथ्य कि स्थानीय भाषाओं में विभिन्न धर्मग्रन्थों के अनुवाद सरलता से उपलब्ध हो गए जिससे क्षेत्र में कलात्मक गतिविधियों का कार्य क्षेत्र विस्तृत हो गया। इन दोनों विद्वान भिक्षुओं अतीश और रिन-चेन-संग-पो के नाम मुख्य हाल में दीवार पर एक लेख में देखे जा सकते हैं जो कि ताबो के मठ में सबसे पुरानी संरचना भी है। लद्दाख राजा तथा गु-गे राजा के नाम भी इसी लेख में दिए गए हैं।

ताबो मठ गी-लग-पा तिब्बत बौद्ध धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। यह सम्प्रदाय जो कि संशोधित शाखा मानी जाती है व जिसकी नींव शौंखा-पा ने रखी थी, के अनुयायी पीले रंग की टोपी पहनते हैं जबकि पुराने सम्प्रदाय में विश्वास रखने वाले लाल रंग की टोपी पहनते हैं।

ताबो में बने मठ के चारों ओर ऊंची मिट्टी की दीवार से भीतर के भाग का क्षेत्र सात हज़ार वर्ग मीटर से भी अधिक है। चौरटन के अतिरिक्त इसमें नौ बड़े कक्ष (गोम्पा) हैं, कुछ चौरटन मठ के प्रांगण व इसके समीप हैं जिनकी संख्या छब्बीस है। इन संरचनाओं के अतिरिक्त गांव में विभिन्न स्थानों पर कई चौरटन पंक्तियों में बने हुए हैं। चौरटनों की बहुत संख्या ताबो-गोम्पा की प्राचीनता की ओर संकेत देती है। इन चौरटनों में विद्वान भिक्षुओं की अस्थियां रखी जाती थीं। दीवार से घिरे मठ के प्रांगण के नौ कक्षों में से प्रत्येक का पृथक नाम हैं :

१. डू-वांग-मुख्य मन्दिर व सभा कक्ष
२. जेल्मा
३. गोखांग
४. चम्बा-चिबो
५. दोमलांग
६. लांग-चेडबो

७. शेर-लांग (ऐसा मन्दिर जिनके भित्ति-चित्रों में सोने का अधिक इस्तेमाल हुआ है.)
८. चिल-खंग
६. लांगर-चुंग

सभी कक्ष भित्ति-चित्रों से सुशोभित है। विभिन्न गोम्पा की दीवारों की ऊंचाई पृथक है और किसी की कक्ष की ऊंचाई पन्द्रह फुट से कम नहीं है। आन्तरिक छतें शहतीरों पर रखे तख्तों से बनी है जो चित्रों द्वारा अलंकृत हैं। समतल छत के मध्य में रोशनदान रखा गया है, उसमें रखे गए छोटे सुराख से प्रात: से सायं तक सूर्य की रोशनी आती है। छत द्वारा अन्दर प्रकाश करने के लिए जो सुराख रखा गया है वह कार्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं बनाया गया है अपितु मन्दिर के आकार की बनावट व उसका स्थान निश्चित करने के पीछे एक सूक्ष्म विचार है। यह वास्तव में 'अग-द्वार' जिसका अभिप्राय ब्रह-रन्ध्र से है और जिसकी हिन्दू मन्दिरों से अप्रत्यक्ष समानता पाई जाती है। हिन्दू मन्दिरों और ऊपरी हिमालय के बौद्ध मन्दिरों के बीच भिन्नता यह है कि हिन्दु मन्दिरों में जिस देवता को मन्दिर समर्पित हो उसके भिन्न-भिन्न स्वरूपों से मन्दिर को बाहर की ओर से सजाया होता है जबकि पर्वतीय क्षेत्र के बौद्ध मन्दिरों के कक्ष अन्दर की ओर से अलंकृत होते हैं। यह अन्तर इस कारण है कि अधिक ऊंचाई पर मौसम प्राय: सर्द रहता है। प्रवेश द्वार के अतिरिक्त इन कक्षों की दीवारों में अन्य कोई छिद्र नहीं है। कुछेक दरवाजों की चौखटों पर काष्ठ-उत्कीर्णन भारतीय शैली के अनुसार किया गया है। यहां तक की सरदलों के मध्य भाग में गणेश की आकृति भी दिखाई देती है।

प्रमुख कक्ष जो कि प्राचीन संरचना प्रतीत होती है, काफी विस्तृत है तथा उसमें प्रवेश द्वार के दूसरी ओर एक अर्धवृत्ताकार झरोखा (apse) बना है अर्थात् कक्ष का प्रसार किया गया है। इसकी कुल लम्बाई चौंसठ फुट और चौड़ाई पैंतीस फुट है। इसमें प्रमुख प्रतिमा 'विरोचन' (आदि बुद्ध जो सर्वोच्च बुद्धि का प्रतीक है) की है जो सफेद गच की बनी है। इस सारे क्षेत्र में 'विरोचन' अत्याधिक लोकप्रिय देवता है जिसकी मूर्तियां प्राय: सभी मन्दिरों/मठों में पाई जाती हैं जो कि रिन-चेन-संग-पो द्वारा स्थापित मानी जाती हैं। ताबो मठ में 'विरोचन' मूर्ति वास्तव में चार अलग-अलग शरीरों की मूर्ति है जो कि पीठ की ओर पीठ करके बैठने की आकृति में दिखाई गई है। यह विशाल आकृति मच पर रखी है इस कारण से पीछे का कक्ष दिखाई नहीं देता जहां पर अमिताभ को (अपार ज्ञान का प्रतीक बुद्ध) सिंहासन पर बैठे दिखाया गया है। उसकी परिचर्या आदमकद की चार खड़ी आकृतियों द्वारा की जा रही है जो कि छोटे कक्ष की पार्श्व दीवारों पर स्थित हैं। देवता के पीछे उड़ते हुए गान्धर्व दिखाए गए हैं। मुख्य कक्ष की दीवारों पर 'विरोचन' की मूर्ति के सम्मुख बत्तीस आदमकद की आकृतियां बैठी हुई मुद्रा में फर्श से लगभग छ: फुट ऊंचे गोलाकार फलक पर प्रदर्शित की गई है। इन गच की आकृतियों का निष्पादन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया गया है। ए० एच० फ्रैंक का विचार है कि ये मूर्तियां हिन्दु देवताओं से सम्बन्धित है। मूर्तिकला व दीवारों पर बने चित्र अत्यन्त कलात्मक हैं तथा समस्त व्यवस्था प्रभावशाली तथा रंगीन है। बाह्य कक्ष तथा मुख्य कक्ष का अन्तराल जानबूझ कर रहस्यवादी प्रभाव उत्पन्न करने के लिए कुछ अंधेरा रखा गया है। जब कोई व्यक्ति इस कम रोशनी के रास्ते से मुख्य कक्ष में प्रवेश करता है तो उसे असाधारण आध्यात्मिक अनुभूति होती है। दीवारें जो चमकीले खनिज एवं वनस्पति रंगों द्वारा की गई चित्रकारी से सुशोभित हैं, उनमें अभी ताजगी दिखाई पड़ती है।

दीवार के स्थान को क्षेतिज रूप में तीन भागों में विभक्त किया गया है। मध्य भाग की चित्रकारी जिसमें महायान बौद्ध के विभिन्न देवी-देवताओं को प्रदर्शित किया गया है सम्भवतः उस समय से सम्बन्धित है जब दसवीं शताब्दी के अन्त में मठ की स्थापना की गई थी। आकृतियां प्रायः आदम कद में चित्रित की गई हैं। रेखाएं गोलाई में सरलता से खींची गई है और उनके कन्टूर और गोलाइयों में शरीर के अंग बड़ी सुन्दरता से दिखाए गए हैं। उन्हें विभिन्न प्रकार तथा आकार के मुकुटों को धारण किए हुए दिखाया गया है जो कि अति सुन्दर है तथा ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें विभिन्न प्रकार के रत्न जड़े हुए हैं जिनका प्रयोग अत्यन्त कलात्मक ढंग से किया गया है। मुकुटों में सुन्दर पट्टियां लगी हुई हैं जिनको ऐसे उत्तम ढंग से गूंथा गया है कि इससे स्वयंमेव अनेक सुन्दर व प्रभावी डिज़ाईन बन जाते हैं। यह कलाकारों द्वारा किए गए अभिनय प्रवर्तन के कारण ही सम्भव नहीं हो पाया है जिन्होंने उस समय वहां कार्य किया था परन्तु कार्य के कई प्रकार के उच्च डिज़ाईन से प्रतीत होता है कि यह प्राचीन परम्परा की प्रतीक है। इसकी शैली अजन्ता की चित्र-कला का स्मरण दिलाती है। ऊंचे फलक के कुछ चित्र भी उसी समय के हैं। परन्तु इस भाग के छत के निकट होने से इसमें पानी रिसता है जिससे चित्र कई जगह पर खराब हो गए थे। खराब हुए चित्रों को प्रायः पुनः बना दिया गया है। नीचे वाले क्षेतिज फलक पर की गई चित्रकारी भी समस्त कक्ष के चारों ओर है। क्योंकि इन सभी मठों में से इस कक्ष का प्रार्थना-कक्ष के लिए इस्तेमाल होता रहा है जिससे इसमें बने चित्रों का खराब होना स्वाभाविक था। इस प्रकार इस स्थान पर बनी तस्वीरें बाद की हैं और उनकी शैली भी भिन्न है। आकृतियां आकार में छोटी हैं तथा फलकों से प्रायः जातक कहानियों के दृष्य तथा गौतम बुद्ध की जीवन-कथा का चित्रण करती हैं तथा उनकी पहचान के लिए लेख लिखे गए हैं। कुछ फलकों पर ऐतिहासिक घटनाओं और ऐतिहासिक व्यक्तियों के चित्र भी चित्रित किए गए हैं जो चित्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं रोचक हैं।

मुख्य कक्ष के सम्मुख प्राचीन संरचना के साथ एक अन्य गोम्पा का निर्माण किया गया है। इसके साथ ही और इस नवीन कक्ष के उत्तरी भाग की ओर एक अन्य कक्ष भी निर्मित किया गया है। इन दोनों कक्षों की दीवारों पर की गई चित्रकारी परवर्ती समय की हैं जिससे इस कल्पना की पुष्टि होती है कि इन दो कक्षों की संरचनाएं बाद की हैं। तथापि केन्द्रीय कक्ष के दक्षिण की ओर लगभग एक वर्गाकार कक्ष है जिसमें की गई चित्रकारी नेपाली चित्रकारी के काफी निकट है जो लगभग बारहवीं शताब्दी की है। कक्ष में चित्रित आकृति को उभार देने के लिए कोई शेड आदि नहीं दी गई हैं। तीव्रता से खींची रेखाएं कलाकार की प्रवीणता को प्रदर्शित करती हैं। प्रयुक्त रंग काफी चमकीले हैं तथा प्रायः गहरे रंग प्रयोग में लाए गए हैं जो न केवल त्रिविमितीय प्रभाव की अभिव्यक्ति करते हैं अपितु जब कक्ष में रोशनी पर्याप्त हो तो रगों की अधिक भिन्नता के कारण उनका पारस्परिक प्रभाव प्रवेप उत्पन्न करता है जिससे आकृतियों के सजीव होने का भ्रम होता है। वास्तव में यह आश्चर्य की बात है कि सभी नौ कक्ष तथा कुछ चौरटन की सभी दीवारें चित्रों से अलंकृत है।

चम्बा-चिबो नामक एक कक्ष में अठारह फुट ऊंचाई की मैत्रियां (भावी बुद्ध) की विशाल आकृति प्रवेश दिवार के सामने की दिवार के साथ रखी है। उत्तर की ओर पहाड़ी की ढलान पर मठ से लगभग चार सौ मीटर की दूरी पर कुछ गुफानुमा कमरे हैं उन सभी में पन्द्रहवीं शताब्दी

अथवा इससे भी पूर्व की चित्रकारी विद्यमान है। ये गुफाएं जो कि अब प्रयोग में नहीं लाई जा रही हैं सम्भवत: सर्दियों में भिक्षुओं के निवास के लिए इस्तेमाल की जाती होंगी। इन गुम्फाओं में से मुख्य प्रार्थना कक्ष के लिए इस्तेमाल की जाने वाली गुम्फा 'दूवांग' के नाम से जानी जाती है।

मठ के विभिन्न कक्षों के भित्ति-चित्र चार विशिष्ट शैलियों में है जो कि भारत एवं नेपाल की चित्रकला के विभिन्न कालों से सम्बन्धित है। ताबो तथा गु-गे के मठ पर चीन की चित्रकला का कोई सीधा प्रभाव प्रतीत नहीं होता। मध्य तिब्बत की शैली की चित्रकला का सम्बन्ध भी कोई अधिक नहीं है। लकड़ी की भीतरी छत पर बने चित्रों की शैली तिब्बत की चित्रकला से मिलती जुलती है परन्तु ताबो के भित्ति-चित्रों की शैली छत की चित्रकला से भिन्न है, किस कारण से है बताना कठिन है। वास्तव में ताबो के भित्ति-चित्र व तिब्बत के चित्र 'गी-लग-पा' के प्रतिमा विज्ञान का अनुसरण करते हुए चित्रित किए गए हैं इसलिए इन चित्रों की शैली में समानता दिखाई पड़ती है। कुछेक आकृतियां विशेषत: धर्मपाल तथा महाकाल की इस तरह चित्रित की गई हैं जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे मुखोटा पहने हुए हैं। और ऐसी ही आकृतियां तिब्बत में भी बनी है यद्यपि उनमें सूक्ष्म भिन्नता है। धर्मपाल धर्म के रक्षक तथा बुराई करने वालों के नाशक है इसलिए उनकी भयानक झलक तथा मुद्रा डरावना दृष्य प्रस्तुत करती है। तिब्बत के केन्द्रीय तथा पूर्वी भाग की चित्रकला की शैली और परम्परा ताबो के चित्र से भिन्न है। जिस प्रकार ताबो में चित्रकार चित्र सर्जन के लिए प्राप्य स्थान का इस्तेमाल करता है। और चित्र का संयोजन करता है, वह तिब्बत की परम्परा से स्पष्टत: भिन्न है। इसके अतिरिक्त ताबो के भिति-चित्रों में जो तत्व व डिजाइन विशेषत: वास्तुशिल्प का नमूना हम देखते हैं वह केन्द्रीय व पूर्वी तिब्बत में पाए जाने वाल चित्रों से भिन्न है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है इस बात के स्पष्ट प्रमाण है कि काश्मीर के कलाकारों ने ताबो में कार्य किया था तथा उनके कार्य की पहचान सहज ही की जा सकती है। बहुत से चित्रों में चित्रित प्रतिमाएं ऐसी दिखाई गई हैं जो कि काश्मीर की मूर्तिकला के काफी निकट है। वास्तव में ए॰ एच॰ फ्रैंक द्वारा काश्मीर पद्धति की दो लकड़ी की लचीली मुद्रा में खड़ी बुद्ध प्रतिमाएं देखी गई थी जिन्हें उन्होंने प्रकाशित किया था। इन मूर्तियों की ऊपर की छतें मुंडेरदार तथा बुद्ध के सिर के पीछे तिपतिया डिजाईन है तथा किनारों पर स्तम्भ तथा भित्ति स्तम्भ दिखाए गए हैं। ये सभी डिजाइन व तत्व रूपरेखा में निसन्देह काश्मीरी है। दुर्भाग्यवश ये मूर्तियां अब वहां नहीं रही है परन्तु दसवीं शताब्दी से सम्बन्धित काश्मीर शैली की लकड़ी पर की गई खुदाई स्पिति उप-मण्डल की पिनघाटी के ला-लुन मठ में अब भी देखी जा सकती है। इसके पश्चात थोड़े समय के लिए ऐसा प्रतीत होता है कि नेपाली कला परम्परा ने ताबो की चित्र-कला गतिविधियों को प्रभावित किया है अथवा नेपाल ने कुछ कलाकारों ने वहीं कार्य करके मठ की कला परम्परा को समृद्ध किया है। इससे अगले चरण में क्षेत्रीय पद्धति की चित्रकला का विकास हुआ। प्रथम चरण के भित्ति-चित्र जो कि दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी से सम्बद्ध है तथा तृतीय चरण में स्पिति घाटी के ताबो में चौहदवीं से सतारहवीं शताब्दियों तक के भित्ति-चित्र शैलीगत दृष्टि से गु-गे, लाहौल एवं लद्दाख के मठों में जो भित्ति-चित्र देखते हैं, से मिलते हैं। वास्तव में यह शैली अधिक विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित थी, यद्यपि यह कभी भी एक राजनैतिक इकाई नहीं रही है। ताबो के परवर्ती चित्रकला पर पंजाब के पहाड़ी राज्यों जो कि इस समय हिमाचल प्रदेश के नाम से जाना जाता है, में प्रचलित

चित्र-कला से प्रभावित प्रतीत होता है। विद्वान रिन-चेन-संग-पो के दो व्यक्ति-चित्र यहां प्रकाशित किए जा रहे हैं। इन्हें लद्दाख के अलची तथा लोतस्वा मन्दिर के भित्ति-चित्रों से उतारा गया है। उपरोक्त वर्णित दोनों शैलियों अर्थात् प्रथम चरण तथा तृतीय चरण (क्रमश: भारतीय अथवा काश्मीरी शैली तथा स्थानीय शैली) के लक्षण तथा भेदक चिन्ह स्पष्ट रूप से इन दोनों व्यक्ति-चित्रों में प्रदर्शित किए गए हैं। रेखाएं और वस्त्रों को चित्रित करने का तरीका दूसरे व्यक्ति-चित्र से भिन्न है। बाद का बना हुआ व्यक्ति-चित्र यद्यपि तिब्बति की शैली में नहीं है परन्तु स्पष्टत: तिब्बत शैली से प्रभावित है। आकृति के पीछे प्रभा-मण्डल जो काश्मीरी चित्रों और धातु की मूर्तियों की एक सामान्य विशिष्टता है, समय के साथ-साथ उसमें परिवर्तन हुआ और परवर्ती काल में अण्डाकार के स्थान पर वृत-आकार को अधिमान दिया गया जिसकी पुष्टि इन दोनों व्यक्ति-चित्रों की तुलना करने पर होती है। रिन-चेन-संग-पो का प्रथम व्यक्ति-चित्र को यद्यपि उस समय की शैली में आदर्श रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है फिर भी व्यक्ति-चित्र की विशिष्टता से सम्पन्न है। उनकी मुखाकृति से ऋषितुल्य एवं विद्वतापूर्ण भावों की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार यह कार्य अनुभूति अथवा स्मरण शक्ति पर आधारित नहीं है। अलची मठ की दीवार पर इस विद्वान का व्यक्ति-चित्र यदि वह समकालीन न भी हो, ग्यारहवीं शताब्दी में नर-मा मठ के समकालीन व्यक्ति-चित्र से नकल किया गया होगा। नर-मा मठ की स्थापना रिन-चेन-संग-पो के जीवन काल में ही की गई थी परन्तु अब यह मठ खण्डहर अवस्था में है।

ताबो मठ अपनी समृद्ध चित्रकारी जो कि विस्तृत क्षेत्र में की गई है तथा एक हजार वर्ष के दीर्घ समय से सम्बन्धित होने के कारण उचित रूप से 'हिमालय की अजन्ता' कहलाता है। इसके संग्रह में बहुत सी महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियां भी हैं तथा प्राज्ञपारमिता का पूर्ण बारह पुस्तकों का मूल पाठ अन्य ग्रन्थों के साथ तुलना के लिए महत्वपूर्ण है। भारत के पुरातत्वीय सर्वेक्षण ने इस मठ को राष्ट्रीय महत्व का घोषित किया है तथा पिछले छ: वर्षों से ग्रीष्म ऋतु में संरक्षण तथा रसायन परिरक्षण विभाग के दल नियमित रूप से यहां आते हैं तथा स्मारक के उचित अनुरक्षण के लिए कार्य करते हैं तथा भित्ति-चित्रों का परिरक्षण करते हैं। हिमाचल प्रदेश सरकार ने यह निर्णय लिया है कि स्मारक के परिसर को सुन्दर बनाया जाए और यात्रियों के लिए आवास की व्यवस्था की जाये। यह प्रसन्नता की बात है कि मठ के आस-पास की कच्ची सड़क को पक्का किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त यहां पौधे इत्यादि भी लगाए जा रहे हैं।

सभी लोगों विशेष कर कला के पारखियों तथा इतिहासकारों के लिए ताबो का मठ अपार हर्ष का विषय होने के अतिरिक्त ऐसे स्थान जो कि अध्यातमवाद के लिए अभी भी सजीव है, यह प्राचीन परम्परा के अवगहन के साथ ही धर्मपरायण व्यक्ति तथा उन सभी के लिए जो आत्मिक अनुसरण तथा मानवता के आत्मिक विकास में रूचि रखते हैं, के लिए दुर्लभ स्वर्ग सुख प्रदान करता है। आशुग्राही एवं संवेदनशील व्यक्ति के मठ में प्रवेश करने पर उसे दुर्लभ शान्ति एवं अन्तरलीनता की अनुभूति होती है।

स्टेट म्यूजियम,
शिमला.

महासुई लोगगीतों में शक्ति-पूजा

—प्रो० हरिराम जसटा

माता, देवी, दुर्गा अथवा शक्ति-पूजा, मानव परिवार के बिखरे समूहों से एक व्यक्ति के व्यवस्थित परिवार की ओर प्रगति की स्थिति को प्रकट करती है। रीति-रिवाज एवं परम्परा अनुसार शक्ति-पूजा इतनी पुरानी लगती है, जितना पुराना परिवार की इकाई से मानव समाज का प्रारम्भ। सम्भवत: आदिमानव भी मात्रशक्ति की ही अराधना करता था। मानव जीवन के विकास का कोई तत्व ऐसा नहीं है जो मातृ-शक्ति देवी-रूपा नारी के अस्तित्व से अद्भुत न हो। शताब्दियों के थपेड़ों से परिवर्तित होती आ रही अध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के मध्य यदि कोई परम्परा अक्षुण रही है, तो वह है शक्ति की प्रतीक देवी, महाकाली, महादुर्गा, महालक्ष्मी और महा सरस्वती की पूजा, अर्चना, जिसे प्रत्येक युग में भारतीय संस्कृति के इतिहास में महत्व मिलता रहा है।

हमारे आदि-ग्रन्थ वेदों में भी देवी पूजा का उल्लेख है। उसमें उषा, पृथ्वी, वाक्, आदिती, रात्री, पुरवी एवं इला का उल्लेख मिलता है। देवी के शक्ति स्वरूप की उपासना भारतीय पुराण साहित्य, इतिहास और धर्म के क्रमिक विकास का एक अभिन्न अंग रहा है। केनोपनिषिद में स्वर्णिम-कांति उमा के रूप का उल्लेख है। 'महाभारत का भीष्म पर्व (६ एवं २२वां अध्याय) 'हरिवंश पुराण में अस्तित्व शक्ति पूजा का आधार माने जाते हैं।

धीरे-धीरे समय पाकर आर्यों की शक्ति-पूजा पर बौद्ध धर्म की महायान शाखा में तारा पूजा का भी प्रभाव पड़ा और इस तरह मां की पूजा से नई शक्तियों और गुणों का सम्बन्ध स्थापित हुआ।

युगों-युगों से महिषासुर-मर्दिनी का रूप ही अधिक लोकप्रिय रहा। मार्कण्डेय पुराण के देवी महात्मय में उल्लेख है, कि किस प्रकार देवताओं का संकट दूर करने के लिए देवी ने महाशक्ति का रूप धारण किया। इससे स्पष्ट हो जाता है, कि आदि-शक्ति भक्तों के कष्ट दूर करने वाली है। महामाया के रूप में देवी ने जगन्माता का रूप धारण किया। इतिहास से ऐसा प्रकट होता है कि प्रारम्भ में भारत के पूर्वी भाग (बंगाल-आसाम) और दक्षिण पश्चिम भाग में शक्ति-पूजा का प्रभाव भारत के अन्य क्षेत्रों से अधिक था। बंगाली भाषा की कृतिवसा रामायण में श्रीराम, मां दुर्गा की पूजा करते हैं, जबकि बालमीकि रामायण में सूर्य की अराधना करते हैं।

आदि शंकराचार्य द्वारा 'सौंदर्य लहरी' में और भास्कराचार्य द्वारा 'ललित सहसरानाम' की टीका से दक्षिण भारत में शक्ति-पूजा के प्रमाण मिलते हैं।

परन्तु उत्तर भारत में देवी पूजा की परम्परा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। 'भविष्य पुराण' में अन्य बातों के अतिरिक्त उल्लेख है: "देवी की पूजा विंध्या पर्वत पर विध्यावासिनी के रूप में होनी चाहिए।" एक अन्य स्थान पर उल्लेख है, 'दुर्गा की पूजा—अंग, बंग, कालिंग, किन्नर, बर्बर (अनार्य) द्वारा होती है।'

हिमाचल प्रदेश में देवी-पूजा प्राचीन काल से चली आ रही है। इसके प्रमाण प्रदेश भर के गांव-२ में देवी के असंख्य छोटे बड़े मन्दिरों का अस्तित्व है, जिसमें आज भी प्रतिदिन पहाड़ी जनता बड़ी श्रद्धा और भक्ति से देवी की पूजा करती है। इन मन्दिरों में प्रमुख हैं, किन्नौर में चण्डिका, ऊषा, चित्ररेखा, हिरमा, तिरासन, पिरासन, युडमायुड, जून, डबला, पूह, लामा, माथी, काली, तथा न्युग का मन्दिर। चम्बा में देवी छतरारी, मृकुला, चण्डी, मिन्घल देवी, जिला कांगड़ा में ब्रजेश्वरी मन्दिर, हमीरपुर क्षेत्र में ज्वालामुखी मन्दिर, ऊना में चिंतपूर्णी, बिलासपुर में नयनादेवी शिमला में हाटेश्वरी, तारादेवी, भीमाकाली, पित्ती देवी, देवी दुर्गा, क्यारी, अष्टभुजी घरेच, कुल्लू में त्रिपुरा सुन्दरी, चुंगरेसा, चंग देवी, मंजनी देवी, अम्बिका निर्मंड, बाला सुन्दरी, हिडम्बा देवी, भेखली देवी इत्यादि। सिरमौर में कटासन, नगरकोटी देवी, भुनाई देवी, भगिनि देवी, कुहिन देवी, सोलन क्षेत्र में भगवती देवी, लाहौल स्पिति में तारादेवी, मण्डी में श्यामाकाली, तारना देवी इत्यादि के मन्दिरों का उल्लेख किया जा सकता है। इन असंख्य मन्दिरों में उत्सवों, त्यौहारों में देवी की विशेष पूजा होती है और प्रदेश के गांव-२ से लोग आकर देवी अराधना के पुष्प चढ़ाते हैं।

शिमला क्षेत्र ने ग्राम देवताओं के साथ देवी की पूजा भी आवश्यक समझी जाती है। परन्तु विशेष त्यौहारों जैसे नवरात्रों, दशहरा, दिवाली एवं शिवरात्रि से पहले ही घर में देवी के भक्तिपूर्ण लोक-गीत ब्रह्मखाड़े-खंजरी की ताल पर झूम-२ कर लोग गाते हैं।

पौराणिक काल से देवी वन्दना का महत्व अनेक स्तुतियों में गाया जाता रहा है। यही कारण था, कि तब देवी की अराधना हेतु 'देवी भागवत' नाम से एक स्वतन्त्र पुराण की रचना की गई। 'देवी भागवत' में देवी की अनेक पीठों और पवित्र स्थानों के वर्णन के साथ-साथ उनके रूप, अर्चना और पूजा की विधियों पर भी बहुत कुछ लिखा गया है। देवी को साक्षात् परब्रह्म, सच्चिदानन्द स्वरूप मानकर उसका महिमागान अत्यन्त सुन्दर रूप में किया गया है। ऐसा ही सुन्दर वर्णन पहाड़ी (माहसुई) के इस लोकगीत, ब्रह्मखड़े में अपनी पूर्ण छटा के साथ उभरा है। इस लोगगीत में भीमाकाली की प्रभावशाली शब्दों में अर्चना की गई है।

भीमा काली

भीमा काली आई माइये, भीमा काली आई लो।
सींघौ रो माई रो बाहणो हाथौ दो खांडो लो।
बोरी बधं मेरी माइयं-जेओ माटं री भांडो लो।
हाथौ दी माईरं बरछी, जं माथे दा टीका लो।
छाती दा तेरे चन्दण लो शोभीला टीका लो।
एक हाथों दी खड़गो, दूजे हाथौ दी ढालौ लो।
काली ऐ माई री चालणी केरी बागरिये हालौ लो।

एक हाथौ दो धनुशौ, दुजे हाथौ दो बाणौ लो।
गौले दो शोभीलो मेरी माइ रै सुनै रो चाणौ लो।
काली माई री बालणी जेश्रो कालौ मेघौ लो।
कालकी सौंगें दुरगे मेरा जन्मौरा नेगो लों।
धन-धन मेरी माइये तेरी साड़ी री लाली।
बौरी बघदी चाली माइये दुरगा काली लो।
धन-धन मेरी माइये चरण री लाली लो।
बड़ी बधकी मेरै भाईयौ दुरगा कालो लो।
एक हाथ खपरो दुजें हाथौ दा तालू ला।
गाची दे शोभी घुंगरू जं कानौ दं बालू लो।
गौंठी दी कांगणी मेरी माइये नाकौ दी तीली लो।
भीमा काली नोखी माइ यौ बरण री नीली लो।
दुरगा नावणी शक्ति करो घौरीली काली लो।
चीटे दांदडू माई रै जेई दूधौ री धारौ लो।
कमरौ हलकी माई रै गाशं छाती रा भारौ लो।
चरणौ सोहिले नुपुर जोडे कानौ दी भूली लो।
माई री उठा श्रौ देहा दौ जं बीणं रा बासौ लो।
आशूऐ धोऊ चरणां जुगौ जुगौ दासौ लो।
माथे दो मुकुटौ मेरी माईयं कमलौरी आखौ लो।
भगती देए मुकती मेरी शरम राखो लों।
बौरी री बाणी बोलै माइये ओठडू रै भौरै लो।
माईये मेरी भीमा कालीए कौली दै कौरं लो।
पौगड़ी हुए माइये तेरे चौरणौ धौरू लो।
गौलती कौरं क्षमा माइये तेरं पाप दा डरू लो।
मौमौ रे बली देऊ माईये बौशौ इन्दरी रो दाणौ लो।
आशू ए धोऊ चौरणौ देऊ बौरी रो खाणौ लो।
करमौ देऊ धरमौ बाजू नाग्र रो नगारौ लो।
आहुती देऊ पराणौ री देऊ आशु रो पनारौ लो।
बीवा देऊ अकली रा थैनौ रा घूपौ लो।
ओरों बोलै मेरी माइये मेरा सौचीय रा रूपौ लो।
चौरणौ कौरं श्रोरं माइये देऊ शीरौ रो फूलौ लो।
भूलौ चूकौन देखी माइये मेरी बालकौ री भूलौ लो।
मौनौ दो कौरे देउरो मेरी बुद्धि दो बासौ लो।
दया (दं) री कौरे दृष्टी पूरै मौनौ री आसौ लो।
देउरो देऊ मौनौ दो छाड़ं कौसरा न डौरौ लो।
भूले न भूले माइये मेरी मांगियौ रा बौरौ लो।

बौरौ री बाणी बोले माइये ओठड़ू रँ भौरे लो।
माइये मेरी भीमा कालीए कौंली दे कौरै लो।
दौशौ गोंठी री औरजा बोशं मन दी मेरे लो।
कौंली कौरे माईये पौड़ू चरणौ दा तेरे लो।
भीमा काली आई माइयौ भीमा काली आई लो।
बाऊंए सौमुएँ भैरू बांका लांकड़ा बीरौ लो।
हणू रँ हाथौ दी धौजा माइये केरी बागरीये फीरौ लो।

(यह लोक-गीत मुझे मधुसूदन दास के सौजान्य से प्राप्त हुआ।)

यह लोकगीत भक्ति भाव से ओत प्रोत है। इस लोगगीत द्वारा गहन अध्यात्मिक अनुभूति प्रकट हुई है। यह लोकगीत भीमाकाली को सम्बोन्धित है और उसके अपूर्व सौंदर्य, वस्त्र, आभूषण अस्त्र-शस्त्रों के साथ-साथ महाकाली के गुणों का सुन्दर बखान हुआ है। यद्यपि यह लोकगीत दार्शनिक नहीं, परन्तु भक्ति भावना का जितना अनुपम चित्र उभरा है, वह अन्यत्र लोकगीतों में दुर्लभ है। देवी के जिस स्वरूप का बखान 'केनोपनिषद', 'महाभारत' और 'सौन्दर्य लहरी' में हुआ है उसी की अद्‌भुत अनुभूति इस लोकगीत में होती है। इस लोकगीत द्वारा शक्ति को दिव्य-शक्ति का प्रतीक बताया गया है। इस शक्ति द्वारा आदि शक्ति संसार का पोषण करती है।

"भीमाकाली का वाहन सिंह है। मां के एक हाथ में शत्रुओं का संहार करने वाला, खण्डा, दूसरे में बरछा है। भाल पर टीका, एक हाथ में खड़ग है और दूसरे में ढाल है। एक हाथ में धनुष है, दूसरे में बाण। गले में सुनहरी आभूषण हैं। हवा में लहराते हुए मेघों जैसे काले बाल हैं। लाल साड़ी पहने मां के एक हाथ में खपर है और दूसरे में तालू है। घूंघरू और बालू पहने हैं। हाथ की उंगली पर अंगूठी और नाक पर तिली है। दूध की तरह श्वेत दांत हैं। पतली कमर और उभरी छाती है। पांव में नुपूरों को झंका और जाँऊ कानों में अलंकृत है। मां के शरीर की सुगन्धी सारी दिशाओं में फैली है। मां के शीष पर मुकुट और कमल जैसी सुन्दर आंखें हैं। होठों पर सहारा वरदान देने वाली वाणी है। मां, मैं मन तुम्हारी बली चढ़ाता हूं और दसों इन्द्रियां तुम्हें भेंट करता हूं। मां, मैं अपना सब कुछ तन, मन, धन तुम्हें अर्पण करता हूं।"

लोकगीत में भक्ति भावना की जो शोभा और श्रद्धा पहाड़ी भाषा में उभरी है, उसका भावानुवाद अन्य भाषा में ठीक रूप से करना सम्भव नहीं।

इसी तरह एक अन्य लोकगीत में आदिशक्ति का मनोहर रूप दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। यह लोकगीत प्रायः शिवरात्री से कुछ दिन पहले या शिवरात्री के दिन भाव-विभोर होकर लोक-गायक गाते हैं। वैसे तो ऐसे लोक गीत रात को गाये जाने की परम्परा है। और वह भी आधी रात के समय। जिस जगह यह गीत गाया जाता है, वह जगह हर तरह से पवित्र होनी चाहिए। धूप दीप जला कर लोकगीत गाते हैं। लोकगीत की मधुर लय जब बातावरण में उभरती है, तो लोग झूम-झूम जाते हैं। देवी-देवताओं के वे भक्त जिनमें देवी-देवता आते हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में घनीता कहा जाता है, इस गीत के आरम्भ होते ही कांपने लगते हैं और उनमें देवी-देवता आ जाता है। वह चीखते और कांपते हुए इस गीत की ताल पर नाचते भी हैं। यह लोकगीत अत्यन्त पवित्र समझा जाता है इसलिए असमय और अपवित्र जगह पर गाना वर्जित है। मूल गीत इस प्रकार है :—

(१)

बामणे तारूग्रा पंडता देवा पंरे पौड़ ला बलिया तेरं
गांठी बान्है ला शेरवा गूला रूशा देवरौ बलिया मेरं
तेरं रूशा ग्रौ देग्ररौ घौरिया मेरं रूशी ग्रौ पंडतंणी
मेघं रूशी ग्रौ बादली घौरिया टीपा बरशदा नही पाणी
बामणे तारूग्रा घोड़ं चौढ़ी तेरा बामणौ नेंहीं ग्राया
सूती से दाड़िये निंदरा नेंई जेरा ग्रन्न भी नेंहीं बलया पाया
नौदी भोटौ दा रूख बड़ा भूंप लागदा नेंहीं पाजा
चणकांदीए माछलिए रस ले गया बड़ा राजा
नौदी भोटौ दा रूख बड़ा भूंपे लागदा नेंहीं पाणी
चणकांदीए माछलिए रस ले गई बौड़ी राणी
नौदी भोटौ दा रूख बड़ा भूंपं लागदा नेंहीं कंरू
चणकांदीए माछलिए रस ले गया काला भेरू
नौदी भोटौ दा रूख बड़ा भूंप लागदा दुई कौलिए
पारू डालाटिए शूग्रा बेशा कांता बाई लेणा इसौ कौलिए
कांता साघाटूग्रा तीर साजे शुग्रा जाई बेशा दूजी डालिए

(२)

इसां गोराड़ी रं बालणी बौड़ी. जेही नागणौ बलिए काली
इसौ गोराड़ी रं माथा बड़ा, जेहा पुनवं रा बलिग्रा चन्द्रमा
इसौ गोराड़ी रं नैयनौ भौलं जेहै मौरचौ रं बलिग्रा दाणं
इसौ गोराड़ी रं नाक भलो जेही कांढं री बलिग्रा धारौ
इसौ गोराड़ी रं ग्रोंठ भौलं जेही मउ ग्रौरी बलिया लालौ
इसौ गोराड़ी रं ग्रोंठ भौलं जेही चावलौ री बलिया चुरिया
इसौ गोंराड़ी रं जीभ भौलं जेही फौपला न बलिया छुरिया
इसौ गोराड़ी रं हाथ बौंड़ं जेही धानौ री बलिया चुलिया
इसौ गोराड़ी रं ग्रंग भोलं जेहै गौरड़ौ रं बलिया गोडं
इसौ गोराड़ी रं पंर बौड़ं जेऐं टीरौ रं बलिया खोबं
हाथौ जोड़ियौ ग्रौरजा कौरू डेवं ग्रापणें बलिया स्थानं

(३)

ग्राधी रातिए दुधां मांगौ भातौ
दूधौ भातौ ग्रा केथौ देऊ ?
दूधौ देग्रौं ली ऐ गजरेटी
गजरेड़ं री बाट भी न जाणू
तींग्रौ गुजरी रो नाग्रों भी ना जाणू
गजरेड़ं री बाट उटी धारी

तींग्रों गुजरी रो नाम्रौं परसेली
तींग्रों मोईये रो नाम्रौं परमेली
दूधौं भातौ सैं परी देली
कांता मेरिया दिल्ली रैं सीया
तेथौं काजलू भौरी ग्राणी घीया
कांता मेरिया दिल्ली रैं बूधा
तेथौ काजलू भौरी ग्राणी दूधा
कांता मेरिया दिल्ली रैं बेला
तेथौं काजलू भौरी ग्राणी तेला
कांता मेरिया दिल्ली रैं गूणा
तेथौ काजलू भौरी ग्राणी लूणा

(४)

चौंरी बेशा ग्रौ ऐ सणसारौ
हातैं किन्दरी मुखैं बोलौं बाणी
माई बापू ऐ सौरी भी न जाणी
गाचो भुगतौं तूबंए पाणी
गून्दा चन्दुग्रा दे चौंउरी ग्राणी
भौरो मंडलौ देग्रौं चौंग्ररी ग्राणी
भोले ईश्रो देग्रौं चौंरी ग्राणी
माई गौरजें देग्रौं चौंरी ग्राणी
तारा मंडलौ देग्रौं चौंरी ग्राणी
पोलैं पतरू देग्रौ चौंरी ग्राणी
खाडू बाकरे देग्रो चौंरी ग्राणी
कुम्भौ कौलशौ देग्रो चौंरी ग्राणी
दीवा-बाटी देग्रौ चौंरी ग्राणी
धूपौ धौड़चौ देग्रौं चौंरी ग्राणी
कालैं भैरू देग्रौ चौंरी ग्राणी

(यह लोक-गीत मुझे जोगेन्द्रसिंह अमरईक के सौजान्य से प्राप्त हुआ)

इस लोकगीत में शंकराचार्य की 'सौंदर्य लहरी' की सारी भावना उतर आई है। भगवान शिव की चिर-संगिनी मां गौरी का आह्वान किया गया है और उसके सुन्दर रूप का नख-शिख वर्णन अत्यन्त भक्तिमयी भावना से सरल और मनोहर भाषा में चित्रित किया गया है। गीत की समाप्ति पर मां गौरी के साथ भगवान शंकर का शिवरात्री के मंडप में आह्वान किया गया है। और उनके साथ अन्य देवी देवताओं की स्तुति भी की गई है। शिव-पार्वती को प्रशन करने के लिए अनेक वस्तुएं शिवरात्री के मंडप में सजाई गई हैं। उन वस्तुओं की भेंट देकर उनकी स्तुति की गई है।

मां शक्ति ने जिस सर्वव्यापी, नाना प्रकार के मनोहर स्वरूप का वर्णन ऋग्वैदिक के देवी-सुक्त, शाक्त उपनिषदों, महाभारत, देवी महात्मय, देवी भागवत, ललितापाख्यान, शक्ति आगमों और भास्कराचार्य की रचनाओं में हुआ है, पहाड़ी लोक-गीतों में भी दयामयी मां का वही स्वरूप भारतीय-दर्शन एवं आध्यात्मिक परम्परा में उभरा है। मां का वही स्वरूप हिमाचल प्रदेश की लोक परम्पराओं में स्थानीय छाप के साथ सुरक्षित है। कहीं शिव गिरिजा से विवाह करने के लिए आतुर हैं और ब्रह्मा को बुला कर कहते हैं :—

क़िले तो कांगड़ै शाठ माई दुर्गा।
मेरी दिन्दा बौरनी पाई जी।

और कहीं सभी देवतागण मिलकर निर्णय करते हैं और ब्रह्मा जी को गिरिजा से विवाह के लिए भेजते हैं। भूतभावन, भोले बाबा, भगवान शिव के गिरिजा के साथ विवाह वर्णन भी अत्यन्त मनोहर भाषा में उभरा है, उसी लोक गीत के कुछ अंश यहां उद्‌धृत कर रहा हूं।

अष्टकुड़ी देवतै खुमली पाई रे
भोले म्हारे इषरौ खि ब्यौहो रो बताई रे
भाटा कौरे ब्रह्मया काशा कोटि जाई रे
भोलै म्हारे इषरौ री बौरनी पाई रे
भाटे दिति ब्रह्मया टोहि काण्है पाई रे
भाटा गोआ ब्रह्मया काशा कोटि जाई रे
सात बेटी राजै री पाणी खि आई रे
भाटे दिति ब्रह्मया टोहि बाटै पाई रे
छः बेटी राजै री टोई लौंगियो डेवी रे
सातवि गिरिजा खौड़ियौं रौहि रे
बेटी दीता गिरिजा पूछना लाई रे
भाटा दिता ब्रह्मया पूछना लाई रे
भाटा बोलू ब्रह्मया टोहि कैंई पाई रे
टोहि न बोलनी इषरौं री साई रे
भाटा कौरी ब्रह्मया बापू आगे आई रे
मेरी दिन्दा बौरनि री बात बताई रे

इसी प्रकार महादेव के विवाह का विशद वर्णन इस लोक गीत में हुआ है। कैसे शिव के रूप रंग के बारे में गिरिजा के माता-पिता पूछ-ताछ करते हैं और अन्त में विवाह की स्वीकृति मिल जाती है। फिर शिव की अद्‌भुत बारात का परिचय भी दिया गया है। कैसे सास भूतभावन भगवान का रंग रूप और विचित्र बारात देखकर बेटी का विवाह करने से इन्कार करती है और कैसे अन्त में ब्रह्मा, ऋषियों, देवताओं के कहने पर बिवाह सम्पन्न होता है, यह सारा चित्रण लोक गीत में हुआ है।

गिरिजा से विवाह होने के बाद एक बार फिर भगवान महादेव शिवलोक से इस धरती पर आने का अनुग्रह करते हैं :—

इषरौ बोलौ "पाताले जामें"
"चाले गिरिजा पैंताले जामें
देखै गिरिजा मेरा तमाशा
चूल्है काकड़ी आपिये आशा"
ईषर नाचौ अंग अंग मोड़ै
"सूले नाचै ला धत्री न चोड़े"
ईषर नाचौ गिरिजा हासा
"बड़ै बाबरे चौड़ि देऊ ल्हासा"

भगवान शिव ने पार्वती से पाताल लोक जाने को कहा और कहने लगे "मेरा चमत्कार देखते रहना। शीत ऋतु में जब लकड़ी जलाने को नहीं मिलती, स्वयं लकड़ी चूल्हे में आ जाएगी।" यह कहकर महादेव नाचने लगे। परन्तु पार्वती विनती करने लगी, कि प्रभू नर्तन धीरे करना, कहीं धरती ही न टूट जाए।

इससे भी अधिक हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध सिद्ध पीठ-ज्वालामुखी का मनोहर वर्णन प्रस्तुत लोकगीत के प्रत्येक शब्द से झलकता है। यह लोकगीत महासू जनपद में पिछले १०० वर्षों से भी अधिक पुराने समय से गाया जाता है।

ऊंचे टीबे ऊपर माईयें भवन बनाया
भवन ऊपर माईयें छाबा छबाया
छाबे ऊपर माईयें कुरड लगाया
कुरड ऊपर माईयें अंडा लगाया
अंडे ऊपर माईयै छेला कटाया
"दर्शन दे मेरी माया", "दर्शन दे मेरी माया"

× × ×

दूरौ दूरौ दो माईयै जातुरू आये
क्या-क्या भेंट चढ़ाये, माईयें क्या-क्या भेंट चढ़ाये
जुगै जुगै जीवें माईयें कांगड़ै रा राजा
जिनै तेरा भवन बनाया, माईयें जिनै तेरा भवन बनाया
नंगै नंगै पैरे माईये अकबर आया
सोने दा छतर चढ़ाया, माईयें सोने दा छत्र चढ़ाया

ऊंचे टीले ऊपर माता शक्ति का भवन बना है। भवन के ऊपर सुन्दर छत पड़ी है। छत के शिखर पर कुरड़ बना है, और उस पर सोने का अंडा सजा है। अंडा लगने पर एक बकरे का बलिदान किया गया। मां, तेरे भक्त पुकार करते हैं, 'दर्शन दो माता।' दूर-दूर से तीर्थ यात्री तेरे

चरणो में आकर तरह-तरह की भेंट चढ़ाते हैं । तू धन्य है मां ! कांगड़ा का राजा जुग-जुग जिये, जिसने तेरा भवन बनाया । अकबर बादशाह भी तेरे चरणों में नंगे पैर आया और सोने का छत्र चढ़ाया ।

इस लोकगीत से यह तो स्पष्ट हो जाता है, कि हिमाचल प्रदेश के निवासी युगों-युगों से मां शक्ति के उपासक रहे हैं जिसका प्रमाण इस देव-भूमि पर बने नए और प्राचीन शक्ति मन्दिर तथा सदियों पुराने लोकगीत हैं, जिनसे जनमानस की शिव शक्ति के प्रति आस्था प्रकट होती है। साथ प्रसिद्ध शक्ति पीठ ज्वालामुखी के प्रति हिमाचलवासियों की अटूट श्रद्धा के कण यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं ।

इसी प्रकार के अनेक प्रसंग पहाड़ी ब्रह्म खण्डों (भजनों) में यत्र तत्र सर्वत्र बिखरे पड़े हैं, जिनमें भगवती जगदम्बा की महिमा. शक्ति स्तुति और अर्चना का प्रभावशाली चित्रण हुआ है। ईश्वर एक है। भारतीय संस्कृति में ईश्वर की पूजा पिता-माता और गुरु के रूप में की गई है। जगदम्बा मां के रूप में ईश्वर का प्राणी-मात्र के प्रति कृपा और प्रेम का मूर्तिमान आदर्श प्रस्तुत हुआ है । जिसने भी दिव्य मां के चरणों की पूजा की, उसे शान्ति प्राप्त हुई । शक्ति मां के चरण-कमलों की शरण में जाकर मानव उसके ध्यान-तीर्थ से पवित्र हो सकता है । मानव कल्याण का यही मार्ग है ।

कुमार बिल्डिंग, संजोली,
शिमला–६.

—:००:—

गदेरन (गदयार क्षेत्र) का जात्रा उत्सव

—अमरसिंह रणपतिया

सर्व प्रथम 'जात्रा' शब्द पर टिप्पणी अनिवार्य है। 'जात्रा' शब्द पहाड़ी भाषा का शब्द है जो अपने क्षेत्र में व्यापक है। यह गदेरन (गदयार प्रदेश-क्षेत्र) में ही प्रचलित नहीं है अपितु हिमाचल की अन्य बोलियों में भी प्रचलित है। हिन्दी लेखकों ने इसे 'यात्रा' शब्द से व्यक्त करने का प्रयत्न किया है परन्तु जो भावनात्मक सम्बन्ध 'जात्रा' का अपने समुदाय से है उसे 'यात्रा' शब्द पूरा नहीं कर सकता। 'जात्रा' शब्द के सुनने और अनुभव करने में जो आनन्द पहाड़ी समुदाय को मिलता है वह 'यात्रा' शब्द से नहीं। यही कारण है कि इस लेख की पंक्तियों का लेखक इस शब्द को जूं का तूं रख कर इस उत्सव की व्याख्या कर रहा है। लेखक का विचार है कि इस प्रकार के अन्य पहाड़ी शब्दों का प्रयोग भी जूं का तूं हिन्दी और पहाड़ी लेखन में करना चाहिये ताकि विशेष समुदाय से इन शब्दों का भावात्मक सम्बन्ध बना रहे तथा हिन्दी भाषा को भी कई इस प्रकार के अन्य भाषाई शब्दों से समृद्ध किया जा सके। अंग्रेज़ी इसी तरह कई अन्य भाषाई शब्दों से समृद्ध हुई है। इसी प्रकार यदि कई पहाड़ी शब्दों को हिन्दी लेखन में अनुवादात्मक रूप दिए बिना मूल रूप में ही लिया जाये तो उन शब्दों की अपनी विशेषता बनी रहेगी।

'जात्रा' शब्द विशेष उत्सवों से सम्बन्धित है जिन का वर्णन इस लेख में संक्षिप्त रूप से किया जा रहा है।

'जात्रा' के अन्तर्गत आने वाले मेलों को निम्न प्रकार से विभक्त किया जा सकता है।

जात्रा को मूलतः दो भागों में बांट सकते हैं :

१. प्रथम शृंखला में वे मेले आते हैं जो निश्चित तिथि को मनाये जाते हैं। हर वर्ष निश्चित तिथि आने पर इस प्रकार का 'जात्रा' उत्सव कालान्तर से मनाया जाता आ रहा है। इस प्रकार के जात्रा उत्सव को भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :

   (क) दिन को निश्चित तिथि को मनाये जाने वाले जात्रा उत्सव और

   (ख) रात को मनाये जाने वाले जात्रा उत्सव जिन्हें पुनः दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :

      (१) बांढा उत्सव और (२) न्होण उत्सव।

२. दूसरे प्रकार के 'जात्रा' उत्सव दुःख और सुख के समय लोगों द्वारा मुसीबत को टालने या आन्तरिक आनन्द के उपलक्ष में देवताओं के प्रति प्रतिज्ञा लेकर (सुक्खणा कर) किसी दिन विशेष देवता के देवालय या घर में (यदि घर में भी देवता हो तो) मनाये जाने का प्रण लिया जाता है। इस प्रकार के 'जात्रा' उत्सव को भी दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं :

(क) रात के समय के जागरे (रत्तजगे या जागरण) और

(ख) दिन की जात्रा।

उपरोक्त 'जात्रा विभाजन' को निम्नांकित चित्र वृक्ष द्वारा दर्शाया जा सकता है :

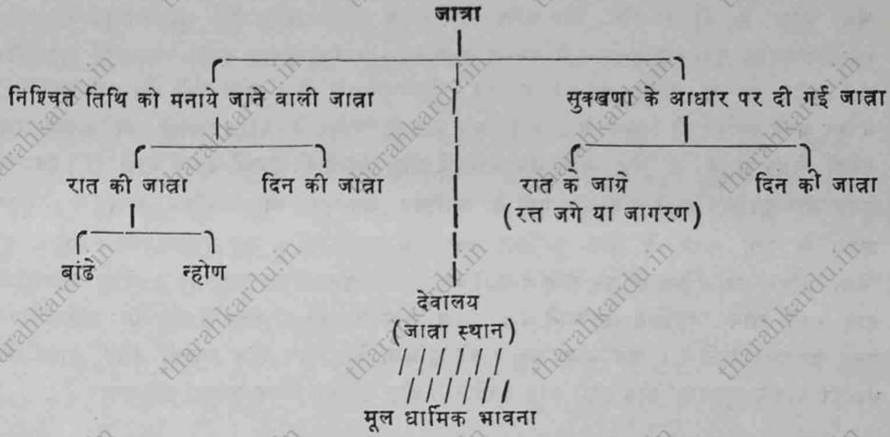

उपरोक्त 'जात्रा' उत्सव विशेष कर 'गदेरन' क्षेत्र में मनाया जाता है। इसका वर्णन करने से पूर्व गदेरन शब्द की व्याख्या करना अनिवार्य है। गदयार क्षेत्र को ही गदेरन क्षेत्र कहा जाता है। गद्दी लोग अपने क्षेत्र को गदेरन शब्द देते हैं। जहां गदयार क्षेत्र शब्द कहीं-कहीं भरमौर उप-तहसील तक ही सीमित रह जाता है वहां 'गदेरन' शब्द भरमौर उप-तहसील का पूर्ण क्षेत्र, छत्राड़ी, पियूर, वस्सु, लिल्ह, बेलज और साहो तथा कीड़ी व मैहला तक के विस्तृत क्षेत्र को अपने में समेट लेता है। यह सारे का सारा थोड़ा बहुत अन्तर लेकर गद्दी भाषी क्षेत्र है। चम्बा के अन्य गद्दी क्षेत्र छुटपुट रूप में आपस में भौगोलिक रूप में एक शृंखला में अटूट सम्बन्ध नहीं रखते अतः गदेरन शब्द केवल इसी शृंखलाबद्ध क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता है। यहां की शत प्रतिशत जनता गादी भाषी है। इस प्रकार गदेरन क्षेत्र को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :

(क) प्रवासी क्षेत्र :—भरमौर की सम्पूर्ण उप-तहसील तथा चम्बा तहसील का कूंर, छत्राड़ी तथा अंशतः प्यूर क्षेत्र प्रवासी क्षेत्र हैं जहां के निवासी सर्दियों में अपने घरों को छोड़ कांगड़ा और अन्य गर्म भागों को चले जाते हैं। इस प्रवास को 'जांधर' कहते हैं।

(ख) गदेरन के अन्य क्षेत्र निवासी अपने घरों को नहीं छोड़ते अतः इस क्षेत्र को अप्रवासी गदेरन क्षेत्र से सम्बोधित किया जा सकता है।

१. (क) अब प्रथम शृंखला में दिये निश्चित तिथि को होने वाले जात्रा उत्सव का वर्णन किया जाता है। सर्व प्रथम इस प्रकार के उत्सव अप्रवासी क्षेत्र में मनाये जाने का ढंग और तिथि का वर्णन किया जाता है। जहां प्रवासी क्षेत्र के लोग इन दिनों अपनी वापसी जात्रा उत्सव में लगे होते हैं। बसो (वैशाखी) के बाद बैशाख मास के आरम्भ में ऐसे जात्रा उत्सव का मानो तान्ता लग जाता है। अप्रवासी क्षेत्र गूं (पुरानी शिवपुरी क्षेत्र जिस का विवरण लेखक ने अपने कई

लेखों में किया है) में पांच बैशाख से नौ बैशाख तक शृंखलाबद्ध जात्रा उत्सव होता है। यद्यपि आजकल यह जात्रा उत्सव धीरे-धीरे जीर्ण हो रहा है फिर भी उसे रसम के तौर पर मनाया जाता है। कुछ वर्ष पूर्व यह जात्रा उत्सव बड़े धूम धाम से मनाया जाता था। यह शृंखलाबद्ध जात्रा उत्सव विभिन्न तिथियों को बिभिन्न देवालयों में मनाया जाता था। नौ बैशाख को बड़ा मेला होता है जो स्थानीय शिव शक्ति मन्दिर में मनाया जाता है। कुछ वर्ष पूर्व यह उत्सव स्थानीय जनता द्वारा बड़े धूमधाम से मनाया जाता था। वजंत्री (वाद्य यंत्री) लोग पूरे पांच दिन ढोल और शहनाई सहित घर-घर जा कर रौनक लगाते थे। लोग उन्हें अन्न और पकी रोटी दे कर अपने कर्त्तव्य को निभाते थे। वे विभिन्न गांव से बाजेगाजे सहित लोगों को उनकी रंग-बरंगी वेशभूषा में ले आते थे। मेले में पंघूड़े और मिठाई की दुकानें लगाई जाती थीं। स्थानीय युवक और युवतियां अपने नाच और गाने से उपस्थित जनसमूह को आकर्षित करते थे। युवक अलग से नृत्य करते थे और युवतियां अलग से नाचती थीं। जब सूर्यास्त होने लगता था तो 'चेला' कांपता था (चेले का इस लेख में कहीं अन्यत्र परिचय दिया जाएगा)। चेला कांपने के बाद सभी लोग विसर्जित हो जाते थे। बजंत्री लोग जात्रुओं को शहनाई और ढोल सहित वापस उनके घर छोड़ आते थे। इस जात्रा उत्सव की शृंखला के अन्तिम दिन वजंत्री लोग जात्रा का घर-घर जाकर 'सुकरात' गीत द्वारा अन्त करते थे। गीत की आरम्भिक कड़ियां इस प्रकार हैं :

गुड़के चमके भाइया मेघा हो
राणी चम्बियाली रे देसा हो।
किहां गुड़कां चमकां हो
अम्बर भरोरा घणे तारे हो।
कुतुए दी आई काली बदली हो
कुतुए दा आया मेघा हो ?
छाती दी आई काली बदली हों,
नैणा दा बरसिया मेघा हो।
सुकरात कुड़ियो चिड़ियो,
सुकरात राजे रे बेढ़े हो।
सुकरात कुड़ियो चिड़ियो,
सुकरात नौणे पनिहारे हो। इत्यादि

गाना चम्बियाली रानी के बलिदान से सम्बन्ध रखता है। चम्बा में इस बलिदान सम्बन्धी मेला चैत मास के अन्त में समाप्त होता है। ऐसा लगता है यह हृदयग्राही गाना चम्बा से प्रतिध्वनित होता हुआ इन इलाकों में पहुंच जाता है और फिर यहां से भी अपना सफर तय करता आगे बढ़ता है।

आज भी यह जात्रा उत्सव निरन्तर इन्हीं तिथियों को मनाया जाता है परन्तु न ही तो वह रौनक देखने को मिलती है और न ही लोगों में वह उत्साह है।

जब इस अप्रवासी क्षेत्र में यह शृंखलाबद्ध जात्रा उत्सव समाप्त होता है तो रावी नदी के उस पार से इसी तरह की ढोल और शहनाई की आकर्षक गूंज सुनाई देती है। रावी के उस पार

गद्यार क्षेत्र या गदेरन का अप्रवासी क्षेत्र बस्सु अवस्थित है जो चम्बा रजवाड़े के समय बस्सु परगना से प्रसिद्ध था। अब इस सुरम्य घाटी में उसी प्रकार एक कड़ी में पिरोये मेले एक-एक करके आरम्भ होते हैं। ये मेले भी विभिन्न देवालयों में मनाये जाते हैं। एक मेला कुंडी नामक रमणीक स्थान में होता है। आज भी यह मेला उसी तिथि को मनाया जाता है परन्तु इसमें भी वह हर्ष व उल्लास और चहल-पहल नहीं। इस लड़ी का अन्तिम जात्रा उत्सव बस्सु क्षेत्र के सतोहर नामक नाग मन्दिर में होता है। यह उत्सव कुछ अपना अस्तित्व लिए है परन्तु इस युग में शराब की बढ़ौतरी ने मेले के महत्व को खो दिया है यही कारण है कि रंग में भंग के कारण यह मेला भी धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खो रहा है।

इन वर्णित जात्रा उत्सवों का एक साथ लगातार होने का बहुत बड़ा कारण यह बताया जाता था कि कुछ वर्ष पहले बर्फ अधिक पड़ती थी। लोग सर्दियों में अलग-थलग पड़ जाते थे। जब मौसम खुलता था तो बहाने से लोग आपस में जात्रा उत्सवों में मिल लिया करते थे। दूसरा सबसे बड़ा कारण यह है कि इस क्षेत्र की जनता इन मेलों के बाद एकदम खेती-बाड़ी में व्यस्त हो जाती है। अतः इस प्रकार के धार्मिक मेले से वे पहले ही फारिग हो जाते हैं।

अप्रवासी क्षेत्र की इस श्रेणी की जात्रा उत्सव की कड़ी कहीं-कहीं हाड़ मास में भी आरम्भ होती है। गूं और बेलज़ क्षेत्र के मध्य एक नाग मन्दिर में इस प्रकार का जात्रा उत्सव हाड़ मास में होता है। इसी प्रकार सामरा में 'सनाहण' नामक देवी के मन्दिर में इस प्रकार का उत्सव हाड़ को होता है। चम्बा में प्रसिद्ध मैहला की जात्रा भी हाड़ मास में मनाई जाती है। मैहला चम्बा शहर से आठ मील की दूरी पर है जो स्थानीय खुरमानी के फल के लिए प्रसिद्ध है। जात्रु (यात्रा में शामिल होने वाले) लोग खुरमानी की गिरी की मालाएं पहनते थे। लोकगीतों से सारे का सारा क्षेत्र गूंज उठता था। इस मेले ने भी धीरे-धीरे अस्तित्व खोना आरम्भ कर दिया है। कारण शराब के दंगे और हुल्लड़बाज़ी है।

इन मेलों का धीरे-धीरे समाप्ति का सबसे बड़ा कारण लोगों का निजी जीवन में अधिक व्यस्त होना है। दूसरा कारण शराब का मेलों में खुले तौर पर प्रयोग होना है। इसके अतिरिक्त सरकार का नियन्त्रण और देखरेख समाप्त होना है। किसी-किसी मेले में जहां सरकार का नियन्त्रण है और देखरेख का प्रबन्ध है उनका किसी हद तक अस्तित्व जीवित है।

इसी श्रेणी में आने वाले जात्रा उत्सवों में प्रवासी क्षेत्र के छोटे-छोटे उत्सवों के अतिरिक्त प्रसिद्ध मेले छात्राड़ी जात्रा, भरमौर जात्रा और कुगति की केलंग की जात्रा है जो विशेष प्रसिद्ध जात्रा उत्सव हैं और अपने महत्व को कालान्तर से पूर्ववत् बनाये हुए हैं। प्रवासी क्षेत्र का जात्रा उत्सव मणिमहेश (स्थानीय मनिमहेश) यात्रा से ओतप्रोत है। यह सकल जात्रा उत्सव मणिमहेश जात्रा के आगे या पीछे इस प्रकार निश्चित किए हैं ताकि मणिमहेश आने वाले श्रद्धालु इन जात्रा उत्सवों का भी आनन्द उठा सकें। दूसरा सबसे बड़ा कारण यहां की जनता का प्रवासी होना है। इन उत्सवों को मना कर यहां के निवासी अपनी फसलों को एकत्रित कर 'जांधर' को प्रस्थान कर जाते हैं। इस उत्सवों की महत्ता बने रहने का सबसे बड़ा कारण मणिमहेश यात्रियों का होना और सरकार की देखरेख भी है। साथ ही सरकार की ओर से कई दल कई प्रकार के कार्यक्रमों से मेले की रौनक को प्रोत्साहित करते हैं। यही कारण है कि दूर-२ से व्यापारी, फोटोग्राफर और अन्य व्यवसायक संस्थाएं भी इन जात्रा उत्सवों की शोभा बढ़ाती हैं।

संक्षिप्त रूप से इन जात्रा उत्सवों का परिचय निम्न प्रकार से दिया जाता है :

छतराड़ी जात्रा :

छतराड़ी एक सुरम्य स्थान है । यह अंशत: प्रवासी क्षेत्र है । चम्बा से लगभग ४० कि०मी० की दूरी पर मोटर सड़क पर 'लूणा' नामक स्थान पर यात्री उतर कर चार किलो मीटर की पैदल पगडंडी तय कर छतराड़ी पहुंचते हैं । छतराड़ी एक ऐतिहासिक स्थान है । यहां पर सातवीं शताब्दी का राजा मेरू वर्मा का बनाया शक्ति देवी का मन्दिर है । मन्दिर में उसी समय की कलात्मक अष्टधातु की सुरम्य मूर्ति है । देवी का मन्दिर भी कलात्मक है । मन्दिर लकड़ी की बनी वास्तुकला की एक अनुपम कलाकृति है । चारों ओर लकड़ी पर पुरानी चित्रकला हुई है । देवी देवताओं, यक्षों और गन्धर्वों के चित्र खुदे हैं । हजारों श्रद्धालु और खोज कर्ता हरवर्ष यहाँ आते हैं ।

जब मणिमहेश जात्रा भाद्रपद राधाष्टमी को सम्पन्न होती है तो उसी दिन प्रात: एक पुजारी मणिमहेश झील से पानी का कमंडलु भर कर लाता है और उसी दिन देवी की मूर्ति को उसी जल से नहलाया जाता है और अलंकृत किया जाता है । दूसरे दिन प्रथम मेला आरम्भ होता है सायं को चार बजे के लगभग बटुक शिव की मूर्ति का रथ निकाला जाता है । मन्दिर के प्रांगण में चारमुखौटे धारियों का नृत्य होता है जिसमें एक मुखौटाधारी देवी का प्रतिनिधित्व करता है अन्य तीन राक्षसों का । इन राक्षसों का देवी युद्ध दिखाया जाता है जिसमें देवी की विजय को दर्शाया जाता है ।

तीसरा और चौथा मेला काफी बड़ा होता है । जिसमें असंख्य लोग भाग लेते हैं । प्रांगण में गद्दी नृत्य देखने योग्य होता है । स्थानीय लोग गद्दी वेशभूषा में पूरे अनुशासन में नृत्य करते हैं । वे गद्दी चोला चूड़ीदार पायजमा, नोकदार ऊनी टोपी जिस पर मोर की कलगी सजी होती हैं दायरे में नृत्य करते जाते हैं । समीप ही वजंत्री (वाद्य यन्त्री) शहनायी, नक्कारा और ढोल लिए अपने यन्त्रों को बजाते जाते हैं तथा नर्तक इसकी लय और ताल पर नृत्य करते जाते हैं । अनुशासन तोड़ने वाले को बाहिर निकाल दिया जाता है । यही कारण है कि छतराड़ी जात्रा अपनी विशेषता बनाए हुए है । यही नहीं छतराड़ी नृत्य भी भारत में अपना स्थान बनाए हुए है । इस प्रसिद्धि को भरमौर के लोक नर्तक भी प्राप्त नहीं कर सके । भरमौर की जात्रा भी यहां के अनुशासन और प्रसिद्धि को नहीं पा सकी ।

महिलाएं जात्रा के पांचवें दिन प्रांगण में अलग से स्थानीय वेशभूषा में सामूहिक नृत्य करती हैं । वे नृत्य के साथ-साथ लोक-गीतों की कड़ियां भी गुनगुनाती जाती हैं ।

पुराने समय जब आने जाने के साधन कठिन हो ते थे हजारों यात्री मणिमहेश नहाने के बाद इसी रास्ते से वापस होते थे तो वे इस जात्रा की शोभा को और भी चार चांद लगाते थे । उस समय छतराड़ी चम्बा के मार्ग में पड़ती थी । अब मोटर सड़क दरिया के किनारे-किनारे बनने से छतराड़ी मन्दिर अलग-थलग पड़ गया है । अब कुछ एक श्रद्धालुओं को छोड़ अन्य मणिमहेश यात्री बसों में सीधे वापस हो जाते हैं । लेकिन फिर भी मेले में पर्याप्त भीड़ होती है ।

भरमौर जात्रा :

भरमौर गदेरन का मुख्य केन्द्र है। इसे चौरासी के नाम से भी जाना जाता है। यह चम्बा रियास्त की पुरानी राजधानी थी तथा ई० सातवीं शताब्दी के मन्दिरों की नगरी है। यहां पर चौरासी सिद्धों की समाधियां और स्मारक हैं। यहां का जात्रा उत्सव प्रसिद्ध है। भरमौर मणिमहेश जात्रा के यात्रियों का प्रवेश द्वार है अतः जन्माष्टमी के आरम्भ से यहां जात्रा उत्सव आरम्भ होता है। क्रमबद्ध छः उत्सव मनाये जाते हैं। जैसे कि अन्यत्र पहले लिखा गया है कि प्रवासी क्षेत्र का जात्रा उत्सव किंचद् मणिमहेश जात्रा से सम्बद्ध है, मणिमहेश यात्री अपना यात्राक्रम इस प्रकार तैयार करते हैं कि जन्माष्टमी से आरम्भ होने वाले इस जात्रा उत्सव का भी आनन्द उठा सकें। सब को विदित है कि मणिमहेश जात्रा जन्माष्टमी को भी होती है और राधाष्टमी को भी अत: जन्माष्टमी के यात्री इस जात्रा उत्सव का आनन्द उठा सकते हैं।

कहा जाता है कि यह जात्रा उत्सव केवल पांच दिन हुआ करता था परन्तु कुछ वर्ष पूर्व श्री श्री १०८, हरिकृष्ण गिरी जी महाराज, जिन्हें लोग प्रायः नांगा बाबा से जानते थे, के समाधिग्रस्त होने के पश्चात् उनकी स्मृति में छठी जात्रा का समारम्भ हुआ।

मणिमहेश जात्रा में ओतप्रोत होने के कारण इसकी प्रसिद्धि किसी दशा में कम नहीं। स्थानीय लोग अपनी रंगबिरंगी गाद्दी वेशभूषा में गाद्दी नृत्य करते हैं जेसे छतराड़ी की गाद्दी वेशभूषा में नोकदार टोपी और उस पर सजी नीलपक्षी की कलगी की विशेष प्रथा है, यहां की वेशभूषा में सिर पर सफेद पगड़ी उस पर सजी उसी प्रकार की कलगी का रिवाज है। नृत्य में ढोल, नक्कारा (स्थानीय भाषा में नगारा), शहनाई का प्रयोग समान रूप से होता है।

इसी जात्रा शृंखला में भदरवाह से आये मणिमहेश यात्रियों का अलग सा जात्रा उत्सव होता है। वे भी उसी तरह नृत्य करते हैं। उनके वाद्ययंत्रों की लह में गादी वाद्ययंत्रों से भिन्नता है। उनका नृत्य भी अपने प्रकार का है।

मणिमहेश जात्रा की समाप्ति पर भरमौर के समीप स्थित ब्रह्माणी देवी जात्रा भी स्मर्णीय है।

कुगति जात्रा :

कुगति भरमौर से मणिमहेश जाने वाले मार्ग पर सोलह मील की दूरी पर है परन्तु जहां मणिमहेश जाने वाले यात्री भरमौर से आठ मील की दूरी से मणिमहेश चले जाते हैं, कुगति हड़सर से आठ मील की दूरी पर पड़ा है। वही मणिमहेश यात्री कुगति की ओर जाते हैं जो कैलाश पर्वत की परिक्रमा कर मणिमहेश झील पर पहुंचते हैं। इन्हीं दिनों कुगति में भी एक जात्रा उत्सव होता है। कुगति में 'केलंग' नामक नाग का मन्दिर है। ऐसा विश्वास है कि केलंग नामक नाग एक मेंढे के सींग पर लाहुल से कुगति पहुंचा था जिसने वहीं रहने का निश्चय किया तथा अपने श्रद्धालुओं से अपना मन्दिर निर्मित करवाने की इच्छा प्रकट की। लोक विश्वास है कि यह देवता कई असाध्य व्याधियों का नाश करता है अतः गदेरन निवासी इसके मन्दिर में जा कर विशेष लाल रंग का ऊनी पहरावा पहन कर जाते हैं। उनका विश्वास है कि केवल मात्र यह पहरावा पहन कर ही कई व्याधियां नष्ट हो जाती हैं। केलंग को कलिहर नाग की श्रेणी में गिना जाता है।

१. (ख) में दिए रात को मनाये जाने वाले उत्सवों में (१) बांढा उत्सव और (२) न्होण उत्सव हैं अतः सर्व प्रथम बांढा उत्सव पर प्रकाश डाला जायेगा :

बांढा उत्सव :

गदेरन क्षेत्र के त्रेठा और चन्हौता रावी घाटी में बांढा नामक जात्रा उत्सव प्रचलित है। यह उत्सव अपनी प्रकार का विशेष उत्सव सैरी त्यौहार से क्रमबद्ध विभिन्न स्थानों में सात दिन तक मनाया जाता है। जैसे कि शब्द से प्रकट होता है बांढे के समय आप सभी महमानों की आवभगत की जाती है। रात को उत्सव होता है, गाने गाये जाते हैं, विभिन्न स्वांग रचाये जाते हैं तथा कई मनोरंजक कार्यक्रम रचाये जाते हैं। इसी उत्सव में सब से बड़ा आकर्षण एक वृक्ष की लम्बी टहनी को घसीटना है। यह एक प्रकार का रस्साकशी का ही प्रारूप है। जो व्यक्ति समूह इसमें जीत जाता है वह जीते हुए खिलाड़ियों की तरह व्यवहार करता है तथा विजय पताका लिए अपने स्थान को प्रस्थान करता है। इस में यह विशेष ध्यान रखा जाता है कि विशेष गांव के लोग एक ही ओर रहें ताकि यह प्रदर्शित हो सके कि फलां गांव विजयी रहा है और फलां हार गया है। युवकों में इस क्रीड़ा में विशेष तौर से भाग लेने का उत्साह पाया जाता है।

जात्रा स्थान अन्य उत्सवों की तरह कोई विशेष देवालय ही हुआ करता है। चन्हौता में यह उत्सव प्रथम असूज-से सात असूज तक मनाया जाता था अब केवल प्रथम तीन दिन ही मनाया जाता है। उन दिनों बाहिर से आये आगन्तुकों की महमाननवाज़ी करना चन्हौता वालों का कर्त्तव्य होता है। इसी प्रकार तीन असूज को क्वार्सी नामक गांव में भी बाढा उत्सव मनाया जाता है जहां उस दिन आस पास के गांव से लोग एकत्रित होते हैं। अपने रिश्तेदारों की खातिर की जाती है। उस प्रकार त्रेठा क्षेत्र में दियोल नामक गांव में भी बांढा जात्रा उत्सव धूमधाम से मनाया जाता है। त्रेठा के शुटकर नामी गांव में भी, जहां शिव और नाग का मन्दिर है, बांढा मनाया जाता है।

बांढा उत्सव की दूसरी विशेषता यह है कि इस प्रकार के मेले केवल आसपास की स्थानीय जनता मनाती है। बड़े बाजार या पंघूड़े इत्यादि का प्रबन्ध नहीं होता। इस प्रकार का उत्सव स्थानीय जनता आपस में मेल मिलाप के लिए आयोजित करती है। सब से बड़ा उद्देश्य प्रवास प्रस्थान से पूर्व आपस में मिलना जुलना और एक दूसरे की महमाननवाज़ी और खान पान से सेवा करना है। इन उत्सवों के बाद प्रवास-प्रस्थान आरम्भ हो जाता है अतः आपसी मिलन की मधुर स्मृतियां भुलाई नहीं जा सकतीं।

(२) रात को मनाये जाने वाले जात्रा उत्सव में दूसरे प्रकार का जात्रा उत्सव 'न्होण' उत्सव अत्यन्त प्रसिद्ध है। 'न्होण' उत्सव उसी दिन हर स्थान पर मनाया जाता है जिस दिन मणिमहेश न्होण मनाया जाता है। मणिमहेश जात्रा (न्होण) के साथ 'साहो न्होण', त्रिलोचन महादेव न्होण', 'लमडल् न्होण', तथा 'नागडल् न्होण' प्रसिद्ध हैं जिनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से दिया जाता है।

मणिमहेश न्होण :

मणिमहेश यात्रा को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है। मणिमहेश जात्रा, मणिमहेश न्होण, डल् न्होण तथा कैलाश जात्रा इत्यादि। कैलाश पर्वत भरमौर उप-तहसील का चम्बा

कैलाश है जिसके दामन में एक झील है जिसे मणिमहेशझील या डल कहते हैं। न्होण का अर्थ रात को जागरण के बाद प्रात: स्नान करने से है अत: इस उत्सव को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। यह प्रसिद्ध उत्सव भाद्रपद राधाष्टमी तथा जन्माष्टमी को मनाया जाता है। जन्माष्टमी राधाष्टमी से पूर्व आती है अत: जन्माष्टमी का मेला वर्षा ऋतु में आता है। इस उत्सव में भी दूर-२ से श्रद्धालु सम्मिलित होते हैं। विशेष कर साधु-संत तथा भद्रवाह के लोग इस उत्सव में अधिक सम्मिलित होते हैं। इस उत्सव में सुविधा यह रहती है कि सर्दी अधिक नहीं होती परन्तु कठिनाई यह होती है कि वर्षा ऋतु होने के कारण मौसम की अनिश्चता बनी रहती है साथ ही मार्ग खराब भी हो सकते हैं। क्योंकि पक्ष परिवर्तन के कारण कृष्णाष्टमी और राधाष्टमी क्रमश: 10/15 दिवस जल्दी या देर से आती है अत: उनके जल्दी और देर के अनुसार ही न्होण ठंडा या गर्म हो सकता है अत: जिस वर्ष न्होण अधिक ठण्डा होता है अधिकांश श्रद्धालु जन्माष्टमी को ही अपनी 'जात्रा' से फारिग हो बैठते हैं। उस वर्ष जन्माष्टमी के न्होण को अधिक भीड़ होती है। जिस वर्ष राधाष्टमी जल्दी आती है उस वर्ष गर्म न्होण होता है अत: राधाष्टमी को बहुत अधिक भीड़ रहती है। महत्व राधाष्टमी का अधिक माना जाता है अत: इस मेले में अत्यन्त भीड़ रहती है। कभी-कभी तो लोगों की संख्या ५०/६० हजार से भी अधिक हो जाती है। श्रद्धालु यात्री भरमौर में मणिमहेश मन्दिर में यात्रा पर प्रस्थान से पहले चेले के द्वारा आज्ञा प्राप्त करते हैं। चेला यात्रियों को शुभ कामनाएं देता है। प्रात: यात्री समूह प्रस्थान करता है। भरमौर पहुंचने के लिए चम्बा से कई प्रकार के वाहन प्राप्त हो जाते हैं। सरकार की ओर से बसों का विशेष प्रबन्ध होता है परन्तु भरमौर से आगे तो कुली के सिवाय कुछ नहीं। कुली भी कठिनाई से मिल सकता है। वाहन रूप में अपने पग ही काम आते हैं। भोजन सामग्री भी स्वयं उठानी पड़ती है। भरमौर से आठ मील की दूरी पर हड़सर नामक गांव है। सायं को लोग हड़सर नामक स्थान में एकत्रित हो जाते हैं। भजन, कीर्तन और जय जयकारे के मध्य रात काटी जाती है। प्रात: ही (दूसरे दिन) लोग 'धनछो' नामक पड़ाव की ओर प्रस्थान करते हैं। 'धनछो' एक निर्जन स्थान है। वस्ती कोई नहीं। यहां दूसरी रात काटी जाती है। तीसरे दिन सुवह ही लोग जय जयकारे की ध्वनि सुनते और उचारते अन्तिम दिन की यात्रा आरम्भ करते हैं। अब 'बन्दर घाटी' और 'भैरों घाटी' (भैरव) जैसे मार्ग को तय करते तथा शिव कटोतरी और गौरीकुंड के ठण्डे नीर का स्नान करते मणिमहेश झील और कैलाश पर्वत का दर्शन करते अपनी यात्रा को सफल मानते हैं। सारी रात जागरण, उत्सुकता और श्रद्धा में काटी जाती है। प्रात: ही अपार समूह झील में स्नान कर वापस आता है। यदि मौसम अच्छा रहा तो शिवजी की परम कृपा मानी जाती है। यदि मौसम खराब हुआ तो बर्फबारी का होना मामूली सी बात है। इस प्रकार यह महाउत्सव सम्पन्न होता है।

साहो जात्रा :

अन्य न्होण उत्सवों में साहो न्होण प्रसिद्ध है। साहो चम्बा शहर से आठ मील की दूरी पर है। यहां शिवजी का मन्दिर है। एक विशाल लिंग है। कहा जाता है कि इस लिंग के मूल का कोई पता नहीं है। इस प्रकार का विश्वास मानो ब्रह्मा और विष्णु के विवाद को साबित करता है। कहा जाता है कि एक बार शिवजी ने अपने आप को एक विशाल लिंगसम प्रकाश में प्रकट किया।

ब्रह्मा और विष्णु दोनों ने इस का पार पाना चाहा। ब्रह्मा ने केतकी के फूल को प्रमाण रूप में दिखाकर इसकी ऊंचाई का झूठा प्रमाण पेश किया उधर विष्णु सूकर रूप में लिंग का पार न पा सके। ब्रह्मा को इसी असत्य के कारण अपना सिर कटवाना पड़ा। यही लिंग मानो इस पौराणिक कथा की स्मृति को लिए है। सारी रात जागरण के बाद लोग नदी में स्नान कर वापस लौटते हैं। यही साहो न्होण उत्सव है जो मणिमहेश यात्रा के दिन ही मनाया जाता है।

त्रिलोचन महादेव न्होण :

तीसरा न्होण उत्सव त्रिलोचन महादेव न्होण कम प्रसिद्ध नहीं। त्रिलोचन महादेव चम्बा से भरमौर की ओर २६/२७ कि०मी० की दूरी पर रावी नदी के दायीं ओर स्थित है। यहां त्रिलोचन महादेव का मन्दिर है। कहा जाता है शिवजी का एक चेला रावी नदी में बहता हुआ इस स्थान पर जीवित पाया गया। उसने यहाँ शिवजी का मन्दिर बनवाने की इच्छा प्रकट की तब से यहां त्रिलोचन महादेव का मन्दिर है। यहां भी मणिमहेश न्होण वाले दिन एक उत्सव होता है। दूर-दूर से लोग यहां उत्सव मनाते हैं तथा प्रातः रावी नदी में स्नान करते हैं।

धौला धार झीलों का देश है। धौला धार में लम-डल्, काली-रा-डल् तथा नागे-रा-डल् से कई झीलें अवस्थित हैं जिन्हें थोड़े से व्यक्ति जानते हैं। यह झीलें इतने दुर्गम स्थानों पर हैं कि कुछ ही व्यक्ति यहां पहुंचते हैं। यहां भी श्रद्धालु उसी दिन पहुंचते हैं तथा स्नान कर वापस आते हैं। लमडल् 'बलॅण पास' के समीप ही है। यह लगभग तीन किलोमीटर लम्बी तथा पहाड़ी नदी सी चौड़ी है। आस-पास धवल शृंग पर्वत हैं तथा मध्य में झील है। कुछ दूरी पर काली का डल तथा प्रसिद्ध क्वार्सी-पास के समीप ही नाग-का-डल है जो मणिमहेश झील के बराबर हैं परन्तु गहराई में अपार हैं ऐसा उनके नील-गगन से पानी से विदित होता है। इसकी यात्रा के लिए धर्मशाला की पहाड़ियों से लोग काफी संख्या में पहुंचते हैं। शायद वह समय भी आयेगा जब इन दुर्गम झीलों तक पहुंचने की सुविधा उपलब्ध होगी! इनके प्राकृतिक दृश्य अवर्णनीय हैं। जो व्यक्ति इन झीलों के दर्शन करने पहुंचते हैं वे अछूती प्रकृति का आनन्द लेते हैं तथा उनके मानस में उस प्रभु की महिमा की छाप अमिट असर कर जाती है जिस का पार किसी ने नहीं पाया। इन गगन-चुम्बी पर्वतों का अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य श्रद्धालुओं को सदा आकर्षित करता है।

२. (क) अन्त में जात्रा के वर्गीकरण के अन्तर्गत २-(क) में वर्णित ऐसे जात्रा उत्सव का वर्णन किया जाता है जो लोगों द्वारा सुख या दुःख के समय सुक्खणा रूप में अर्थात् देवताओं के प्रति किसी समय देने की प्रतिज्ञा की गई है। मनुष्य अपनी मन की कामना की पूर्ति हेतु ईश्वर या देवता से प्रार्थना करता है कि अमुक कामना यदि पूर्ण हुई तो उस अराध्य देवता को जात्रा दे कर मनायेगा। उस अराध्य देवता के लिए किसी विशेष वस्तु अर्पित करने की प्रतिज्ञा की जाती है जैसे कि जात्रा के समय उस देवता को चांदी का छत्र अथवा बनावटी जीभ या त्रिशूल या शंख या घण्टा या इसी प्रकार की अन्य वस्तु। कभी-कभी बलि देने की सुक्खणा (प्रतिज्ञा) भी की जाती है। इसी प्रकार उस अमुक देवता को कई प्रकार से प्रसन्न रखने के लिए मनाया जाता है।

ऐसे जात्रा उत्सव को घर में पवित्रता से भोजन सामग्री तैयार की जाती है जिसे 'संज' कहा जाता है। उसे बाजे गाजे सहित अन्य अराध्य वस्तु के साथ ले जाया जाता है तथा मन्दिर में चढ़ाया जाता है। ऐसा जात्रा उत्सव मंगल या रविवार के दिन मनाया जाता है। वृहस्पतिवार भी ऐसे जात्रा उत्सवों के लिए शुभ माना जाता है। कभी-कभी सुक्खणा के मौके पर श्रद्धालु अपना हठ कर बैठता है और देवता की वस्तु को किसी टहनी को मरोड़ कर बांध आता है और प्रार्थना कर आता है कि उसकी इच्छा की पूर्ति पर ही इस प्रकार का बन्धन खोला जायेगा अतः ऐसे जात्रा उत्सवों पर देवता को इस प्रकार के बन्धनों से भी मुक्त किया जाता है।

कुछ समय तक यह जात्रा उत्सव चलता है फिर चेले के कांपने और आशीर्वाद देने के बाद ऐसा जात्रा उत्सव समाप्त होता है।

चेला कांप चुकता है तत्पश्चात् यह प्रसाद (संज) उपस्थित जात्रुओं में बांट दिया जाता है।

ऐसे जात्रा उत्सव नाग मन्दिरों में प्रायः देखने को मिलते हैं। जब गाय बछड़ा देती है तो नाग विशेष को उसका घी चढ़ाने पर ही परिवार में घी का प्रयोग हो सकता है। कभी घर का मुखिया या घर की बड़ी औरत तब तक घी या दूध का प्रयोग नहीं करेगी जब तक इसे नाग विशेष के मन्दिर में चढ़ाया नहीं गया। अन्य परिवार के सदस्यों को घी दूध प्रयोग करने की छूट दी जाती है परन्तु जब तक घी उठा कर अराध्य देवता के निमित नहीं रखा जाता इसका प्रयोग विवर्जित समझा जाता है। लेकिन हर दशा में इस कार्य के लिए जात्रा उत्सव की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। बड़े प्रयत्न के बाद पुत्र होना, सिर के बाल उतारना, कहीं मौत के मुंह से बच निकलना, धन दौलत की वृद्धि होना अन्य हर्ष का कारण होना इत्यादि सभी जात्रा के विषय हैं।

अनावृष्टिं के समय नाग मन्दिरों में जात्रा उत्सव की होड़ सी लग जाती है। विवाह के बाद कभी-कभी युगल जात्रा उत्सव में मन्दिर जाते हैं। रोग या व्याधि से मुक्ति मिलने के बाद भी जात्रा उत्सव मनाया जाता है। विवाह और पुत्र उत्पत्ति के बाद 'कुलज' का पूजन अनिवार्य समझा जाता है।

(ख) इसी प्रकार रात के समय ऐसे मनाये जाने वाले उत्सव को जागरा (जागरण या रत्तजगा) कहा जाता है। ऐसे मौके पर घर से बजंत्री सहित मन्दिर में जाते हैं। सारी रात भजन कीर्तन और चेला कंपाया जाता है। कहीं-कहीं अंचली-गीत भी गाया जाता है। दूसरे दिन प्रातः भोजन का प्रबन्ध किया जाता है। यदि ऐसे जागरे में बलि दी हो तो उस पशु को वहीं भोजन के काम लाया जाता है यदि ऐसा नहीं तो अमांसी भोज तैयार किया जाता है।

ऐसे जागरण भी अपने अराध्य देव के मन्दिर में मनाये जाते हैं। ऐसा देवता शिव अथवा नाग या 'कैलू' भी हो सकते हैं।

'कैलू' औरत का देवता है। इसे रुष्ट होने पर प्रायः जागरण के माध्यम से मनाया जाता है। यह सिद्धों और नाथों का वीर है और शायद उसी समय से इसे मनाने की प्रथा चली आ रही है। इस देवता को मनाने स्त्री अपने पति को साथ ले कर नहीं जाती। यह कुप्रथा सिद्धों और नाथों के काल से उत्पन्न हुई लगती है। कैलू को जागरण के समय पूर्ण वस्त्र से

विभूषित किया जाता है। यह श्वेत पत्थर के रूप में एक स्मारक मात्र है जिसे घर के समीप वृक्ष के नीचे रखा जाता है।

इस जात्रा उत्सव के अतिरिक्त कई अन्य उत्सव हैं जैसे गुगैहल, हड़नात्र, नवाला इत्यादि जिस का वर्णन कहीं अतिरिक्त लेख में किया जायेगा।

इस लेख में चेले और बलि का विशेष स्थान है जिस का परिचय इस लेख के अन्त में अपेक्षित है :

चेला :

हर जात्रा उत्सव तब तक अधूरा है जब तक चेला नहीं कांपा और उसने आशीर्वाद नहीं दिया। चेला ऐसा व्यक्ति है जिसे तथाकथित देवता से वरदान प्राप्त होता है जिसके अनुसार उस में ऐसी आंतरिक शक्ति मिलती है जिसके द्वारा वह थोड़ी देर के लिए दिव्य शक्ति प्राप्त कर लेता है जिसे आम लोग 'करामात' शब्द से सम्बोधित करते हैं। ऐसी दिव्य शक्ति क्षणिक मानी जाती है। इस करामात के लिए ढोल या शहनाई पर विशेष राग अलापते हैं तथा धूप और दीप किया ज.ता है। साथ ही देवता की जय जयकार ध्वनि से वातावरण को गुंजायमान किया जाता है। ऐसा वातावरण पैदा किया जाता है कि उक्त व्यक्ति थर-थर कांपने लगता है। कांपते-कांपते वह धूप और पानी देवता को अर्पित करता है फिर वाद्ययन्त्रों को प्रसाद रूप छींटे मारता है तत्पश्चात सभी उपस्थित व्यक्तियों पर पानी का हल्का सा छिड़काव करता है। इसके उपरान्त वह सांकल से स्वयं को पीटता है और कभी-कभी एक बारीक सूए से जीभ को बींधता है और धीरे-धीरे बोलना आरम्भ करता है। वह मानो देवता का मुंह बोला बन कर देवता का सारा संदेश लोगों तक पहुंचाता है तथा विशेष संदेश भी देता है। कुछ ही मिनटों के बाद वह बैठ जाता है और साधारण व्यक्ति बन बैठता है। हां यदि देवता अमांसी हो तो सूआ (जिसे स्थानीय भाषा से सूड़ा कहा जाता है) जीभ में नहीं लेता।

इसी वातावरण में कुछ अन्य व्यक्ति भी कांप उठते हैं। थोड़ी देर के बाद वे भी कांपते-कांपते बैठ जाते हैं। अब प्रश्न उठता है कि क्या यह पुजारी होता है? नहीं यह अनिवार्य नहीं कि यह पुजारी हो। कहीं पुजारी चेला भी है परन्तु हर स्थान पर नहीं। हर देवता का अपना-अपना चेला है। कभी-कभी एक ही व्यक्ति विभिन्न देवताओं का प्रतिनिधित्व भी करता है। क्या यह वंश परम्परा से है? नहीं ऐसा अनिवार्य नहीं, परन्तु कहीं-२ ऐसी प्रथा वंश परम्परागत भी है। चेला सामयिक भी हो सकता है परन्तु प्रसिद्ध चेलों की ही मान्यता है। कभी-कभी तो देवता की किसी पर कृपा दृष्टि हो सकती है परन्तु यह प्रथा है कि प्रसिद्ध चेले को अवश्य सुना जाए तत्पश्चात् अन्य चेलों को भी सुन सकते हैं। किसी-किसी वंश में ऐसे चेले पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे हैं। कहीं-कहीं पुजारी ही यह दोनों कार्य करता है तो कहीं यह दोनों क्षेत्र अलग-अलग व्यक्ति के अधिकार क्षेत्र में है।

कुछ चेले घर पर मनाए ऐसे उत्सवों पर आमन्त्रित किए जाते हैं। ऐसे चेले को व्यवसायक चेले भी कह सकते हैं। ऐसे चेले जादू-टोने का उपचार भी करते हैं। वे घर में ऐसे स्थानों का पता लगाते हैं जहां जादू दबाया हो या टोना किया हो। वे उपचार रूप में झाड़ फूंक भी करते हैं।

अन्य प्रकार के चेले जादू टोने से प्रभावित औरतों का इलाज भी करते हैं ऐसे उपचार को डोली या नल्ली बिठाना कहते हैं।

चेलों की एक अन्य श्रेणी है जो अपने घरों में ही मंगल या रविवार को खबरें देते हैं जैसे किसी वस्तु का चोरी जाना और उसका पता लगाना। किसी के रोग के कारण को बताना तथा उपचार करना, जादू टोने का पता लगाना इत्यादि।

यह सब कहां तक सत्य है यह लेखक का कार्य नहीं। इस पर खोज की जा सकती है।

इसी लेख में 'बलि' का परिचय अनिवार्य है जिसका जात्रा उत्सव में महत्व है।

बलि प्रथा :

वर्णित जात्रा उत्सव बलि प्रथा के आधार पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक जात्रा उत्सव ऐसा है जिसमें 'बलि' अनिवार्य है तथा चेले के कांपने से पहले किसी भेड़, बकरे या बकरी को काटा जाता है और कभी-कभी चेला उस पशु के लहू को मुंह लगा कर पी जाता है ऐसी क्रिया को अरूहर कहते हैं। पशु के सिर को पुजारी को दिया जाता है। टांगों को वजंत्री को दिया जाता है। कुछ चेले को दिया जाता है। आन्तों के भाग को भून कर वहीं बांट दिया जाता है। इत्यादि।

परन्तु देवताओं का ऐसा वर्ग भी बताया गया है जो अमांसी है। वहां बलि नहीं दी जाती। कहीं नाग अमांसी हैं तो कहीं शिव अमांसी हैं। मणिमहेश झील पर तो हज़ारों पशु झील में ही काट दिए जाते हैं पर त्रिलोचन महादेव अमांसी शिव हैं। इसी प्रकार कई नाग मांस भक्षी हैं तो कई अमांसी हैं जो केवल दूध और घी से संतुष्ट होते हैं।

वास्तव में जहां ऐसे साधु सन्त रहे होंगे जो मांसाहारी नहीं थे उन्होंने उन देवताओं को बलि से मुक्त कर अमांसी ठहराया और जहां ऐसा प्रभाव नहीं रहा बलि प्रथा चली आ रही है।

शिक्षा के प्रसार और विस्तार के बाद शायद यह बलि प्रथा धीरे-धीरे समाप्त हो जाये।

जहां बलि का व्यय पूरा नहीं हो रहा है वहां स्वतः यह प्रथा समाप्त हो रही है। बलि के व्यय को बहुधा 'ढाल्' रूप में एकत्रित किया जाता है। 'ढाल्' का अर्थ ऐसे व्यय को सब पर डालना है तथा उसे तदनुसार उगाहया जाता है। यह प्रथा अब धीरे-धीरे ढीली पड़ रही है फलतः इसका प्रभाव बलि प्रथा पर भी पड़ रहा है। इस प्रकार की कुप्रथा समाप्त होना अनिवार्य है।

प्रधानाध्यापक,
राजकीय उच्च विद्यालय, चन्हौता,
जिला चम्बा (हि०प्र०)

हिमाचल की लघु अजन्ता-नाको मठ

— छेरिंग डुगे ठाकुर

हिमाचल प्रदेश के जिला लाहुल-स्पिति के स्पिति घाटी में ताबो गांव एक प्राचीन ऐतिहासिक तथा विस्तृत मठ के लिए प्रसिद्ध है जो कि बौद्ध विषयक उत्कृष्ट भित्ति-चित्र से आलंकृत है। इस विषय वस्तु पर कई विद्वानों ने अपनी लेखनी द्वारा अनेक लेख लिखकर ताबो-मठ को हिमाचल की अजन्ता सिद्ध करने में कोई कसर नहीं छोड़ रखी है। इसी प्रकार की एक लघु अजन्ता किन्नौर जिले के नाको गांव में भी विद्यमान है जहां आज तक किसी विद्वान की लेखनी नहीं पहुंच पाई है, इसका यही एक कारण हो सकता है कि यह गांव समुद्र तल से लगभग १३००० फुट की ऊंचाई पर स्थित है और वहां तक पहुंचने के लिए राष्ट्रीय उच्च मार्ग संख्या २२ से ढलानदार चढ़ाई चढ़नी पड़ती है।

नाको गांव का नामकरण तिब्बत के एक विद्वान छोछे-रि-पोछे ने किया है जो काग्युद्पा सम्प्रदाय के थे और जो लगभग आठवीं शताब्दी में यहां आए थे और उन्होंने इस गांव का नाम नेगो रखा जो आज बिगड़ कर नाको बन गया है नेगो का शाब्दिक अर्थ है तीर्थस्थल और सम्भवतः नेगी शब्द नेगो से बना होगा। नाको वास्तव में ही एक रमणीय तीर्थ स्थल है। गांव की पूर्व की ओर एक सुन्दर झील है, जहां शरद ऋतु में लोग मनोरंजनार्थ आइस-स्केटिंग करते हैं। हिमाचल सरकार ने गांव वालों के लिए २५ आइस स्केटिंग शू दे रखे हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वहां के प्राकृतिक सौंदर्य पर तो लोगों की दृष्टि गई परन्तु इस गांव में जो बौद्ध मठ है उन पर किसी की आज तक, दृष्टि नहीं गई। नाको गांव की कुल जनसंख्या लगभग ५०० है, वहां एक प्राईमरी स्कूल है, इस गांव में कुल ६० घर हैं, नाको गांव तीर्थ-स्थल के रूप में इस बात से भी सिद्ध हो जाता है कि इस गांव में लगभग द्रुमा सम्प्रदाय के १०० लामाएं हैं जिनमें से १० जोमों (महिला लामा) भी हैं। जो साधना में रत अपने इस तीर्थ स्थल के धार्मिक महत्व को बढ़ाते हैं। नाको गांव की सुन्दरता का एक विशेष कारण यह है कि गांव के ठीक ऊपर पुरग्युद री (Purgud Peak) जिसकी ऊंचाई समुद्र तल से २२,००० फुट है ऐसा लगता है कि अनादिकाल से इस गांव को अपने आंचल मे लिए स्थित है।

नाको गांव के ठीक बाएं ओर नाको मठ स्थित है जिसे स्थानीय उप-भाषा में लोचा-लखङ् कहते हैं। लोचा लखङ् का अभिप्राय: है प्रसिद्ध विद्वान लोचा रिन्छेन जंगपो द्वारा निर्मित लखङ् अर्थात् देवगृह। यह मठ बिल्कुल ताबो मठ से मिलता-जुलता है। इस मठ की वास्तुकला भी ताबो मठ के वास्तुकला के स्तर की है। यहां ताबो मठ की तरह बहुत सारे कक्ष तो नहीं हैं परन्तु उनके समरूप चार मुख्य कक्ष हैं जिनका विवरण निम्न है :—

१. लखङ् छेदमो :

यह कक्ष उक्त चार कक्षों में बड़ा है इस लिए इसे लखङ्–देवगृह तथा छेदमों–बड़ा अर्थात् सब से बड़ा देवगृह कहा गया। इस कक्ष में सर्वसमविद् वैरोचना प्रमुख अन्य पांच मूर्तियां दीवार पर टिकी हुई हैं और लगभग मिट्टी निर्मित ३७ लघु आकार की मूर्तियां भी हैं। ये ३७ लघु आकार की मूर्तियां ताबो मठ में स्थित उन ३७ मूर्तियों का ही लघु रूप हैं। यहां चांदी तथा ताम्र का एक-एक बोधि स्तूप भी है। इसकी भित्ति पर सर्वसमविद् वैरोचन मण्डल चित्रित है। जिसमें उल्लेखनीय यह है कि भित्ति-चित्र को चित्रित करने के लिए सोने का बहुत प्रयोग हुआ है। अधुना केवल मात्र उसके अवशेष ही रह पाये हैं क्योंकि सुरक्षा के आभाव में दीवार से कुरेद-कुरेद कर सोना निकाल कर ले गए हैं। यहां एक दोवंग कहलाने वाला धारणी संग्रह ग्रन्थ भी है जिसके दो पृष्ठ स्वर्ण अक्षरों में लिखे गए हैं। एक जनश्रुति के अनुसार इस ग्रन्थ को जहां भी रखें वहां रात को प्रकाश होता है। इस लखङ् का निर्माण दसवीं शताब्दी में हुआ लगता है। जिसके फलस्वरूप यह ताबो मठ का समकालीन कहला सकता है।

२. लखङ् गोंगमा :

यह देवगृह बड़े देवगृह के ऊपर की ओर स्थित होने के कारण लखङ् गोंगमा अर्थात् ऊपर वाला देवगृह कहलाता है। इस कक्ष में रत्नसम्भव प्रमुख १० बुद्धों की मूर्तियां हैं जिनमें से आठ दीवार पर तथा दो स्तम्भ पर ठीक उसी प्रकार टिके हुए हैं, जैसे ताबो मठ में वैरोचन मण्डल की ३७ मूर्तियां। धारणा है कि ये दस दिशाओं के बुद्ध हैं। कक्ष की दायीं ओर तथा बायीं भित्ति पर वज्र धातु की मण्डल चित्रित लगते हैं जो क्षतिग्रस्त अवस्था में हैं और स्पष्ट दिखाई नहीं देते। इस कक्ष का निर्माण काल भी ताबो मठ के उन विभिन्न कक्षों के समान दसवीं शताब्दी मानते हैं।

३. ज्ञमग-लखङ् :

जहां लामाओं के धार्मिक नृत्य (छम्) के लिए ज्ञमग का मुखौटा छम् से पूर्व इस लखङ् से निकलता है इससे इस कक्ष का नाम ज्ञमग लखङ् रखा गया। इस कक्ष में कोई मूर्ति नहीं है केवल भित्ति चित्र ही कक्ष की शोभा बढ़ा रहे हैं। द्वार के ठीक सामने की भित्ति पर बुद्ध, दोनों शिष्यों शारिपुत्र और माद्गलयन तथा अन्य लामाओं के चित्र के साथ चित्रित हैं। कक्ष की दायीं भित्ति पर अभितायु चतुर्भुज का चित्र अंकित है और बायें ओर वज्रधर तथा द्वार के ठीक ऊपर छेरिंगमा सिंहवाहनी का चित्र धर्मपाल के रूप में अंकित है। इस कक्ष का निर्माण काल भी उपरोक्त कक्षों के समान ही है।

४. करचुङ् लखङ् :

इस कक्ष के सामने के भित्ति चित्र अस्पष्ट हैं, दायें ओर की भित्ति पर अभितायु बुद्ध, बायें ओर की भित्ति पर सहस्रभुज का चित्र तथा कक्ष के द्वार के ऊपरी भाग में ज्ञमग लखङ् की तरह छेरिंगमा सिंहवाहनी धर्मपाल के रूप में अनेक देवी देवताओं के चित्रों के साथ चित्रित हैं इस लखङ् का निर्माण काल भी दसवीं शताब्दी ही बताया जाता है।

उपरोक्त इन चारों लखङ् अर्थात् देवगृह का निर्माण स्थानीय जनश्रुति के अनुसार प्रसिद्ध विद्वान लोचा रिन्छेन जंगपों ने दसवीं शताब्दी में किया। इससे स्पष्ट है कि यह मठ ताबो मठ से पूर्व या पश्चात् बना होगा। यह निर्णय करना अनुचित होगा कि यह मठ ताबो मठ के बाद का है परन्तु इस मठ की उत्कृष्ट भित्ति चित्र ताबो मठ के भित्ति चित्र से कम उत्कृष्ट नहीं है। अतः हम इसे ताबो मठ के समकालीन ही मान सकते हैं। इसके अतिरिक्त यहां इस गांव में तीन और लघु लखङ् हैं जिनका विवरण इस प्रकार है :—

१. दुङ्ग्युर लखङ् गोंगमा :

दुङ्ग्युर का अर्थ है, धर्मचक्र जो एक विशाल काष्ठ की गोल पेटी में प्राचीन धर्मग्रंथों तथा अन्य पवित्र चीजों से भरी होती है जिसको एक रज्जु के सहारे घुमाया जाता है। इस लखङ् में दुङ्ग्युर (धर्मचक्र) के अतिरिक्त कुछ मुर्तियां भी हैं और भित्ति-चित्र भी। यह लखङ् प्राचीन नहीं लगता यह दोनों दुङ्ग्युर लखङ् में से ऊपर वाला है। अतः इसे दुङ्ग्युर गोंगमा कहते हैं।

२. दुङ्ग्युर लखङ् योगमा :

यह स्पष्ट है है कि यह नीचे वाला लखङ् है। यह लखङ् भी दुङ्ग्युर लखङ् गोंगमा की तरह ही है। यह भी प्राचीन नहीं लगता।

३. जबजे लखङ् :

जबजे का अर्थ है पदचिन्ह। इस लखङ् में किसी मानव के दायें पांव का पदचिन्ह एक पत्थर पर है और उस पत्थर के ऊपर ही पद्मसम्भव की एक मूर्ति भी रखी है। जनश्रुति के अनुसार यह पदचिन्ह पद्मसम्भव का मानते हैं। इस लखङ् के भित्ति-चित्र लगभग १२ वीं शताब्दी के लगते हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि यह नाको मठ ताबो मठ के समकालीन निर्मित होने से काफी महत्वपूर्ण जान पड़ता है। आवश्यकता इस बात की है कि इस मठ की सुरक्षा भी ताबो मठ की भांति हो ताकि हमारी संस्कृति सुरक्षित रह सके।

—०:०—

हिमाचल लोक जीवन में ऋतु-दर्शन

—हरिकृष्ण मुरारी

विज्ञान ने ऋतुओं को छः भागों में विभाजित किया है परन्तु हिमाचल प्रदेश का लोक-जीवन इससे सन्तुष्ट नहीं। उसने इन ऋतुओं को बारह भागों में विभाजित कर दिया तथा प्रत्येक भाग को अलग-अलग नाम दे दिया। यह नाम उसी आधार पर ढाले गए, जिस प्रकार का मौसम होता है।

सचमुच हिमाचल का लोक-जीवन कितना अनूठा है, जहां हर वस्तु अपना अनोखा एवं आकर्षक रंग लिए विद्यमान है। यहां की हर वस्तु अपना अद्भुत रंग लिए मस्त होकर झूमती प्रतीत होती है। इसी प्रकार ये बारह ऋतुएं भी अपने-अपने रंग में आती, झूमती और चली जाती हैं। इन ऋतुओं के नाम, हिमाचल के लोक विज्ञान के अनुसार इस प्रकार हैं:

१. ठाण, २. चम्बड़चीसियां, ३. नैह सूल, ४ गोहर सोत्तू, ५. हुञ्जू-कूच्चू, ६. मग्गर मनिषियां, ७. लोह्टक-भोह्टक, ८. मिर्ग-स्नाइयां, ९. तीर, १०. दक्खनैण, ११. कुरल, १२. कुरली।

ये हैं इन बारह ऋतुओं के नाम। अब देखना यह है कि यह ऋतुएं किस-किस महीने की किन-किन तिथियों को आती हैं। इस वर्णन को जनवरी मास से आरम्भ करना ही उचित रहेगा। जनवरी मास में ठाण आते हैं अतः इस वर्णन को यहीं से आरम्भ करना ही संगत लगता है।

१. ठाण :

इस ऋतु का समय ८ जनवरी से लेकर २३ जनवरी तक माना गया है। अर्थात् यह ऋतु पौष महीने के २४ प्रविष्ठे को आरम्भ होकर माघ महीने के ९ प्रविष्ठे को समाप्त होती है। 'ठाण' पहाड़ी बोली का शब्द है। इसे हम हिन्दी में भयंकर शीत, अत्याधिक सर्दी का नाम दे सकते हैं। इन दिनों जो लगातार १६ दिन ठण्डे पानी से नहाता है, उसे बहुत बहादुर समझा जाता है। इन दिनों सर्दी इतनी तीव्र होती है, बस पूछो मत। जिससे आदमी के हाथ पांव सुन्न हो जाते हैं। कई बूढ़े, गरीब इत्यादि तो सचमुच इन दिनों स्वर्ग-लोक की यात्रा पर रवाना हो जाते हैं। यह ऋतु १६ दिन तक रहती है। इसके पश्चात् जो ऋतु आती है उसे हिमाचल लोक जीवन में 'चम्बड़चीसियां' का नाम दिया है।

२. चम्बड़चीसियां :

यह ऋतु माघ महीने के १० प्रविष्ठे को आरम्भ होकर इसी महीने के २५ प्रविष्ठे को समाप्त होती है। अर्थात् यह ऋतु २४ जनवरी से आरम्भ होकर ८ फरवरी को समाप्त होती है।

इसी आधार पर इस ऋतु को नाम 'चम्बड़चीसियां' रखा गया है। इन दिनों ठण्ड इतनी अधिक नहीं होती, जितनी 'ठाणों' में होती है। लेकिन फिर भी ठण्ड से चाम (चमड़ा) सुन्न हो जाता है। ठण्ड शरीर से चिपक जाती है। तभी तो इस ऋतु का नाम 'चम्बड़चीसियां' पड़ा। यह ऋतु भी १६ दिन का समय लेती है।

३. नेह सूल् :

चम्बड़चीसियों के पश्चात् आरम्भ होने वाली ऋतु 'नैह सूल्' के नाम से जानी जाती है। नैह तथा सूल् दोनों पहाड़ी भाषा के शब्द हैं, जिन का हिन्दी अनुवाद नाखुन एवं कांटा होता है। यहां नैह का अर्थ नाखुन तो ठीक है परन्तु सूल् का अर्थ कांटा से शीत अथवा ठण्ड माना गया है। इन दिनों ठण्ड केवल नाखुनों तक ही सीमित रहती है। इस लिए इस ऋतु को यहां के लोक-जीवन ने नैंह-सूल् की संज्ञा प्रदान की।

इस ऋतु का समय ९ फरवरी से १६ फरवरी तक अर्थात् २६ माघ से लेकर ४ फागुन तक माना गया है। यह ऋतु केवल आठ दिन का ही समय लेती है।

४. गोहर-सोत्तू :

नंह-सूल् के उपरान्त जो ऋतु आती है, उसे 'गोहर-सोत्तू के नाम से पुकारा जाता है। यह ऋतु केवल पांच दिग का समय लेती है। इसका समय १७ फरवरी से २१ फरवरी अर्थात् ५ फागुन से ९ फागुन तक माना गया है।

इन दिनों ऐसे तुफान चलते हैं, रास्ते (पहाड़ी में गोहर कहते हैं) अपने आप ही साफ हो जाते हैं। इस लिए इस ऋतु को हिमाचल के बुद्धिजीवी लोक-जीवन ने 'गोहर-सोत्तू' अर्थात् रास्तों को साफ करने वाली ऋतु कहा है।

५. हून्जू-कूच्चू :

गोहर-सोत्तू के पश्चात् आने वाली ऋतु को हिमाचल लोक-जीवन ने 'हून्जू-कूच्चू' का नाम दिया। यह पहाड़ी भाषा का शब्द है। इसका हिन्दी अर्थ 'कूड़ा-करकट इकट्ठा करना होता है। इन दिनों ऐसे झक्खड़ (तुफान) चलते हैं जिन से बिखरा हुआ कूड़ा-करकट, पत्ते इत्यादि एकत्रित होकर एक स्थान पर ढेर रूप धारण कर लेते हैं। तभी तो इस ऋतु को हून्जू-कूच्चू कहा गया है।

यह ऋतु २२ फरवरी से १ मार्च अर्थात् १० फागुन से १७ फागुन तक का समय लेती है। यह ऋतु केवल आठ दिन का समय लेती है।

६. मग्गर-मनिषियां :

छठी ऋतु अर्थात् हून्जू-कूच्चू के पश्चात् आने वाली ऋतु को हमारे लोक-जीवन ने 'मग्गर-मनिषियां' का नाम दिया है। मग्गर एक प्रकार के बाँस की जाति है। इन दिनों तुफानों से बाँस आपस में जोर-जोर से बजते तथा झुक-झुक कर भूमि को छूते हैं। यहां के लोक-जीवन में मनिषियों

का अर्थ बजना एवं झुकना ही माना गया है। इस ऋतु का समय २ मार्च से लेकर ६ मार्च अर्थात् १८ फागुन से लेकर २५ फागुन तक माना गया है। यह ऋतु भी हुन्जू कूच्चू की भान्ति आठ दिन का ही समय लेती है।

७. लोट्टक-भोट्टक :

सातवीं ऋतु को लोट्टक-भोट्टक का नाम मिला है। लोग इन दिनों कोई भी शुभ कार्य नहीं करते। लोट्टक अर्थात् लोट देना (उल्ट देना) तथा भोट्टक अर्थात् भट्ठा बिठा देना (कार्य को बिगाड़ देना) इस नाम के यही अर्थ होते हैं। इस लिए तो इन दिनों कोई भी शुभ कार्य नहीं किया जाता। अगर किया जाए तो वह बिगड़ जाता है। इस लिए तो हिमाचल लोक-जीवन ने इस ऋतु का यह नाम रखा है। यह ऋतु १० मार्च से १७ मार्च अर्थात् २६ फागुन से आरम्भ होकर ३चैत्र को समाप्त होती है। यह भी आठ दिन का समय लेती है।

८. मिर्ग स्नाइयां :

यह ऋतु २४ ज्येष्ठ को आरम्भ होकर ८ आषाढ़ अर्थात् ७ जून से आरम्भ होकर २२ जून को समाप्त होती है। इन दिनों गर्मी अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी होती है। पहाड़ी भाषा के शब्द मिर्ग को हिन्दी में बाघ कहा गया है। इन दिनों धूप इतनी तेज़ होती है कि पूछो मत। जिस प्रकार बाघ के दिखाई देने से पसीना छूटता है, उसी तरह इन दिनों गर्मी से पसीना बहता है। स्नाइयां का हिन्दी में अर्थ सुनाई देना होता है। इसे गर्मी का प्रतीक माना गया है। इस लिए इस ऋतु को मिर्ग स्नाइयां की संज्ञा मिली। यह ऋतु १६ दिन लेती है।

९. तीर :

ये ऋतु २३ जून से आरम्भ होकर ८ जुलाई को समाप्त होती है। अर्थात् ६ आषाढ से लेकर २३ आषाढ़ तक का समय लेती है। इन दिनों धूप तीर की भान्ति शरीर में चुभ जाती है। इसलिए इस ऋतु को तीर नाम मिला। इन दिनों फसल के लिए वर्षा का होना अति आवश्यक होता है। इन दिनों वर्षा न होने से फसल नष्ट हो जाती है। पहाड़ी में कहावत भी है कि :—

बरेह तीर तां होए मीर,
सुक्के तीर बणें फकीर।

अर्थात् इन दिनों वर्षा होने से फसल अच्छी होती है अत: किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। सूखा पड़ने से फसल नष्ट हो जाती है, जिससे निर्धनता का सामना करना पड़ता है। यह ऋतु भी मिर्ग स्नाइयों की तरह १६ दिन का ही समय लेती है।

१०. दक्खनैण :

'तीर' के उपरान्त आने वाली ऋतु दक्खनैण है। यह ऋतु २४ आषाढ़ से लेकर ८ सावन तक का समय लेती है अर्थात् ६ जुलाई से आरम्भ होकर २४ जुलाई को समाप्त होती है।

दक्खनैण अर्थात् दिक्खनैण का अर्थ आंख-मिचौनी निकलता है। इन दिनों बादल एवं सूर्य आपस में आंख-मिचौनी खेलते हैं। इसलिए इस ऋतु को इस नाम से पुकारा जाता है। यह ऋतु भी १६ दिन का ही समय लेती है।

११. कुरल :

'दखनैण' के पश्चात आने वाली ऋतु कुरल मानी गई है। कुरल का अर्थ लगे रहना निकलता है। यह समय बरसात का होना है। अत: वर्षा का लगे रहना ही स्वाभाविक हो सकता है। सचमुच इन दिनों मूसलाधार वर्षा होती है। इसका समय २४ सावन से लेकर ३१ सावन अर्थात् ६ अगस्त से १६ अगस्त तक निश्चित किया गया है। यह ऋतु आठ दिन का समय लेती है।

१२ कुरली :

हिमाचल लोक जीवन ने उपरोक्त ऋतु कुरल के दो भाग कर दिए। एक भाग नर (कुरल) तथा दूसरा मादा भाग (कुरली) बना दिया। इस ऋतु पर लोगों में अनेक टिप्पणियां मिलती हैं परन्तु सब की सब मन घड़न्त प्रतीत होती हैं। कुरल के समाप्त होते ही इसका आरम्भ हो जाता है। गुण कुरल जैसे ही हैं। इन दिनों बरसात अपने पूरे यौवन पर होती है। इस ऋतु का समय प्रथम भादों से लकर आठ भादों तक अर्थात् १७ अगस्त से २४ अगस्त तक माना गया है। यह भी आठ दिन का ही समय लेती है।

सचमुच हिमाचल लोक जीवन कितना अनूठा एवं सुन्दर है, जहां हर वस्तु अपना अलग रंग लिए विद्यमान है। इससे तो यही सिद्ध होता है कि हिमाचल का ऋतु-विज्ञान विश्व के ऋतु विज्ञान से कहीं आगे है। यह बात केवल हिमाचल पर ही लागू नहीं होती अपितु भारतवर्ष पर भी लागू हो सकती है। क्योंकि यहां (भारतवर्ष) का विज्ञान जब चांद पर पहुंचा था तो विश्व का विज्ञान अभी भूमि पर भी नहीं चल पाया था। यह समय बहुत पुराना है। जब लंका पर रावण का तथा अयोध्या पर राम का राज्य हुआ करता था। हमारे विद्वानों में केवल एक कमी रही कि उन्होंने अपना गुण, अपने तक ही सीमित रखा। जब उनका अन्त हो गया तो साथ ही गुण की भी समाप्ति हो गई। पुरातन समय में हमारा भारतवर्ष सबसे अग्रिम रहा है। इसके पिछड़े रहने का केवल यही कारण है। इसलिए हिमाचल का ऋतु विज्ञान भी आज तक केवल कुछ लोगों की जुबानों तक ही सीमित रहा। कुछ समय से हिमाचल लोक साहित्य विशेष प्रकार से उन्नति के पथ पर बढ़ रहा है। जिससे कई प्रकार के विशेष संस्मरण सम्मुख आ रहे हैं और आगे भी आते रहेंगे। ऐसी सम्भावना है।

कार्यालय :
गांधी विश्व हिन्दी विद्यापीठ
शाहपुर कांगड़ा (हि०प्र०)

—:००:—

शिमला क्षेत्र के देसी राज्यों में विरोध-प्रदर्शन

पी० एन० सेमवाल

आज के प्रजातांत्रिक युग में विरोध-प्रदर्शन के विविध रूप हैं—जलूस, सभाओं का आयोजन, असहयोग, समाचार पत्र आदि, आदि। विरोध-प्रदर्शन प्रजातांत्रिक अधिकार माना जाता है जिसके द्वारा सत्ता के प्रति असहमति या अधिकारियों के द्वारा सत्ता के दुरुपयोग व अतिक्रमण के प्रति रोष प्रकट किया जाता है। इसके आधुनिक रूप का श्रीगणेश श्रमक वर्ग ने औद्योगिक क्रान्ति के समय किया था। आज तो नित्य-प्रति ये प्रदर्शन आर्थिक और राजनैतिक जीवन के अभिन्न अंग बन गये हैं। सामन्तवादी समाज में इस प्रकार के जागरण और अधिकारों के प्रति जागरूकता का प्रायः अभाव था। व्यक्ति और समाज के विभिन्न वर्गों का शोषण और उत्पीड़न साधारण सी बात थी। शासक वर्ग स्वेच्छाचारी ढग से लोगों का दमन करते थे। विरोध और असहमति को ऐसे समाज में कोई स्थान नहीं था। रूढ़ियों और परम्पराओं से बन्धा समाज इन्हीं के निर्देश और अनुशासन पर चलता था। ये रूढ़ियां और परम्पराएं काल की मन्थर गति से निर्मित विधि के विधान का रूप धारण कर लेती थीं। पर ये परमपराएं मुख्यतः शासक वर्ग की सुविधा के अनुरूप होतीं थीं। इनके प्रभाव से समाज स्वानुचालित जैसा हो जाता था। ऊंच-नीच का भाव, मान-प्रतिष्ठा के माप-दण्ड, स्वामी-भक्ति और राज-भक्ति की भावना और संस्कार समाज की अन्तर्निहित शक्ति के रूप में विद्यमान होते थे। व्यक्ति की निकृष्ट और दयनीय सामाजिक स्थिति भी उसके भाग्य और पूर्व जन्म अर्जित कर्मों की परिणिति मानी जाती थी। किसी को दोष देने का प्रश्न ही नहीं उठता था। ऐसा समाज प्रशान्त जलाशय की भान्ति अविचलित और अपरिवर्तित रहता था। पुरातन समाज सदियों तक अवाध गति से रूढ़िगत अपरिवर्तनशील एकरूपता से चलता रहा। परन्तु जब कभी रूढ़ियों और परम्पराओं के विपरीत कोई परिवर्तन या सुधार की बात हुई तो समाज में इसका वाचाल या मूक विरोध हुआ। परन्तु पहाड़ी क्षेत्रों में इस विरोध-भावन में आत्म पीड़न, आत्म क्लेश का तत्व सदा विद्यमान रहा। साधु, सन्तों और मनीषियों ने तपस्या या दूसरे शब्दों में शरीरिक कष्ट और क्लेश के द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने, उसकी कृपा को पाप्त करने की परम्परा डाली। पुराने जमाने में राज-सत्ता के प्रति भी कुछ ऐसा ही रूख अपनाया जाता था। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध प्रायः ऐसा आग्रह व्यक्त किया जाता था जैसा कि इन घटनाओं और उदाहरणों से स्पष्ट होगा।

डूम :

पुराने पहाड़ी राज्यों में सत्ता के प्रति विरोध-प्रदर्शन का एक विशिष्ट रूप था जिस को डूम कहते थे। ऐसा प्रदर्शन प्रायः कई जगह होता था और यह विफल नहीं रहता था। इस प्रदर्शन में आत्म-पीड़न की भावना निहित होती थी। अपने आप को कष्ट और क्लेशों में डाल कर

विरोध व्यक्त किया जाता था। जब कभी राज्य कोई ऐसा काम करता था। ऐसा कर लगाता था जिस को लोग अनुचित और अन्याय पूर्ण समझते थे तो वे अपना रोष व विरोध प्रदर्शित करने के लिए गांव को छोड़ कर पास के जंगल में चले जाते थे। वे अपने परिवार और पशुओं को भी साथ ले जाते थे। फलस्वरूप खेती-बाड़ी का काम ठप्प पड़ जाता था। खेत बंजर पड़ जाते थे। डूम आन्दोलनकारियों को तो इससे कष्ट होता ही था, पर राज्य को भी इससे भारी क्षति होती थी। तब राज्य की आय का मुख्य स्रोत लगान था जो खेती की उपज का चौथा या पांचवां भाग होता था। जब खेती ही नहीं होगी तो राज्य की आय कहां से होती ? स्पष्ट है कि ऐसे आन्दोलन से राज्य-सत्ता विचलित हो जाती और आन्दोलनकारियों की मांग पूरा करने का अबिलम्ब प्रयास करती थी। डूम आन्दोलन प्रायः व्यवस्था और शान्तिपूर्वक होता था। राज्य के अधिकारियों को आन्दोलनकारियों के पास जाना पड़ता था और उनको मनाना पड़ता था। शुलह-समझौता होने पर लोग अपने घरों को वापिस आते और पुनः अपने व्यवसाय, खेती-बाड़ी और दूसरे कामों को सम्भालते। बुशैहर राज्य में सन् १८५९ में डूम आन्दोलन हुआ। इसका प्रमुख केन्द्र रोहड़ू का इलाका था। इस असन्तोष के कई कारण थे, परन्तु मुख्यतः यह सन् १८५४ में सम्पन्न हुई जमीन की पैमायश के विरुद्ध था। नूरपुर निवासी तहसीलदार श्यामलाल ने उक्त समय जमीन का बन्दोबस्त किया और नकदी लगान निश्चित किया। उसके पूर्व जिन्स के रूप में, पैदावार का निश्चित भाग, अन्न, घी, तेल, ऊन, भेड़-बकरी आदि प्राचीन प्रथा के अनुसार राज्य को कर के रूप में देने पड़ते थे। इस असन्तोष का सम्बन्ध तत्कालीन राज्य व्यवस्था से भी था। सन् १८५० में राजा महेन्द्र सिंह की मृत्यु हुई। उस समय राज्य का उत्तराधिकारी राजा शमशेरसिंह केवल ११ वर्ष का था। राजा की अल्प वयस्क अवस्था में पहले पवारी का वजीर मनसुखदास व्यवस्थापक रहा और बाद में श्यामलाल को भी सह-व्यवस्थापक नियुक्त किया गया। परसराम नाम के व्यक्ति को राज्य में अध्यक्ष नियुक्त किया गया। यह व्यवस्था तत्कालीन सुप्रिन्टैण्डैंट वारन्स के आदेश पर की गई थी। खानदानी वजीरों का प्रभाव समाप्त प्रायः कर दिया गया था। इस आन्दोलन के मूल में ये खानदानी वजीर थे जो खोई हुई सत्ता को पुनः प्राप्त करना चाहते थे। एक राज-वंशीय व्यक्ति कुंवर फतेहसिंह भी परोक्ष रूप से इस आन्दोलन को भड़का रहा था। नकदी लगान के विरुद्ध लोगों का सब से बड़ा तर्क यह था कि राज्य में सिक्कों का अभाव था। लोगों का विनिमय, आपस में और राज्य के साथ, जिन्स और अन्य वस्तुओं के माध्यम से होता था।

इस आन्दोलन को समाप्त करने के लिए पोलिटिकल सुप्रिंटैण्डैंड को बुशैहर जाना पड़ा था। लोगों ने आन्दोलन समाप्त करने हेतु तीन मांगे रखीं। खानदानी वजीरों को पुराने दस्तुर के अनुसार सत्ता सौंपना। तत्कालीन व्यवस्था को समाप्त करना और लगान की वसूली परम्परागत ढंग से जिन्स और वस्तुओं के द्वारा करना। वारन्स ने ये तीनों मांगें स्वीकार की। तब यह आन्दोलन समाप्त हुआ। जन-श्रुति यह बताती है कि सत्ता के विरूद्ध इस प्रकार आन्दोलनों की परम्परा बहुत पुरानी और व्यापक पहाड़ी क्षेत्र में प्रचलित थी।

गट्टी और चावल :

शासक या उसके अधिकारियों के अत्यचार और अन्याय के विरूद्ध आक्रोश और विरोध प्रकट करने का एक और भी ढंग था। उसको 'गट्टी' या 'चावल' कहते थे। जिन लोगों को या

समाज के जिस वर्ग को सत्ता के कारण कोई कष्ट होता था उनमें से कुछ व्यक्ति मन्दिर अथवा किसी अन्य पवित्र स्थान पर एकत्र होते थे और मिलकर यह संकल्प या प्रतिज्ञा करते थे कि वे अन्यायपूर्ण राजाज्ञा का पालन नहीं करेंगे या अनुचित कर को नहीं देंगे अथवा सम्बन्धित अधिकारियों से कोई सम्बन्ध या सरोकार नहीं रखेंगे जब तक उनकी बात न मानी जाए। ऐसे अवसर पर इस संकल्प के प्रति वचनबद्ध होने के लिए चावल के दाने बांटे जाते थे। इसके अभाव में पत्थर के कंकर या ऐसी ही कोई अन्य वस्तु सबमें बांटी जाती थी। इनको स्वीकार करने पर सब प्रतिज्ञा-बद्ध हो जाते थे। ये लोग संस्कारों से धर्म-भीरू होते थे। अतः दृढ़ता से अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते थे। जिस सत्ता के विरूद्ध यह प्रतिज्ञा होती थी, प्रथा के अनुसार उसको इनके पास आना पड़ता था। फलतः समझौता सम्पन्न प्रायः हो जाता था। इस उपलक्ष्य में देव-मन्दिर में भेंट-बलि दी जाती थी। खान-पान के उपरान्त शान्ति और सद्भाव पुनः स्थापित हो जाता था। इस प्रथा में त्याग और आत्म पीड़न की कोई बात नहीं है। पर विरोध व्यक्त करने का यह निर्दोष विधान सौ वर्ष पूर्व शिमला क्षेत्र में आम प्रचलित था।

द्रोही, वारण और थाल :

पारस्परिक असहमति और धन-सम्पति के झगड़ों को निपटाने के भी लोगों ने सरल साधन अपनाये हुए थे। छोटी-छोटी बातों के लिए राजा या ठाकुर तक पहुंचना प्रत्येक व्यक्ति के लिए इतना आसान नहीं था, पर झगड़े और कलह तो जीवन का अभिन्न अंग थे। सबल निर्बल को दबाने का प्रयत्न करता, बलपूर्वक दूसरे की सम्पत्ति पर किसी न किसी ढंग से अधिकार करने की प्रवृति सब जगह होती थी। इन साधारण से झगड़ों के समाधान के लिए राज-सत्ता की न्याय सुविधा तत्काल और स्थानीय रूप से उपलब्ध नहीं होती थी। पर उस सत्ता की दुहाई देकर न्याय प्राप्त करने का तरीका लोगों ने युग-धर्म की सादगी और सच्चाई के अनुरूप ढूंडा हुआ था। यदि किसी सबल ने निर्बल को पीड़ित किया, उसके खेत, खलियान, घासनी, पेड़ अथवा अन्य वस्तु पर अधिकार कर लिया है और बहुत समझाने-बुझाने और विनम्र-प्रार्थना करने पर भी नहीं मानता तो ऐसी अवस्था में पीड़ित व्यक्ति राज-सत्ता की दुहाई देता था और पीड़ा देने वाले दमनकारी को यह कहकर प्रतिबन्धित करता था कि यदि तुमने अमुक अनुचित कार्य किया तो तुमको राजा की सौगन्ध है, देवता का नाम लेकर भी यह बन्धन लगाया जा सकता था। यह पीड़ित व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर था कि वह देवता की शपथ से अथवा राजा की शपथ से अपने विरोधी को प्रतिवन्धित करे। इस प्रकार के बन्धन को 'राजा की द्रोही' या 'देवता की द्रोही' कहते थे। द्रोही का आशय सौगन्ध से है; परन्तु ऐसा लगता है कि इस वाक्यांश का वास्तविक अर्थ यह है कि यदि अन्यायी व्यक्ति ने अमुक काम किया तो वह राजा या देवता के प्रति द्रोह, विद्रोह समझा जावेगा—ऐसी ध्वनि इसमें प्रतीत होती है, द्रोही के स्थान पर दो अन्य शब्द भी उपयुक्त होते थे—राजा या देवता का 'वारण' या 'थाल' तुम्हारे ऊपर हो यदि तुमने वर्जित कार्य किया। इन शब्दों से भी विरोधी को प्रतिबन्धित किया जा सकता था। आशय और प्रभाव दोनों का एक जैसा था। 'वारण' का अर्थ कदाचित रोकना हो और 'थाल' देव-शक्ति के आह्वान का साधन हो। यह प्रतिबन्ध 'द्रोही', 'थाल' और 'वारण' कहकर विरोधी पर थोपी जाती थी। इसके उपरान्त वह बन्ध-जैसा जाता था और अन्याय व अनौचित्य की स्थिति तत्काल समाप्त हो जाती थी।

इस प्रकार पुरातन समाज में राज-शक्ति और देव-शक्ति अवश्य रूप से सदा उसमें विद्यमान रहती थी। और उसके आह्वान मात्र से अन्याय को रोका जा सकता था। यह तत्कालीन समाज की सरलता और परम्पराओं के प्रति अगाध आस्था के कारण सम्भव था। राज-तंत्र तब इतना जटिल नहीं था; पर समाज में 'मत्स्य-न्याय' की भी कभी नहीं थी। सबल-निर्बल को सताता था, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु उसको नियामित करने के ये सरल और सशक्त साधन थे। यदि कोई निरर्थक किसी को इन शपथों से प्रतिबन्धित कर देता तो ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध अभियोग चलता था और उसको दण्डित किया जाता था। इसमें जुर्माना के अलावा देवता को बलि देना भी शामिल था। कई राज्यों में इस प्रकार से बन्धित व्यक्तियों को शपथ-मुक्त करने का अधिकार ठाकुर या राजा को होता था। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में जुब्बल के राणा पद्मचन्द्र ने जब अपने राज्य में आधुनिक अदालतों की स्थापना की तो किसी को 'द्रोही', 'वारण' और 'थाल' से मुक्त करने का अधिकार केवल राणा को ही था। इस सम्बन्ध में याचिका किसी अन्य अदालत में नहीं दी जा सकती थी।

आत्म-दाह द्वारा विरोध प्रदर्शन :

अन्याय से क्षुब्ध और संतप्त व्यक्ति कई बार इससे छुटकारा पाने के लिए आत्म-दहन भी करते थे। कुल्लू के इतिहास में सोलहवीं सदी के राजा जगत सिंह के राज्य-काल की एक प्रसिद्ध घटना है। उस समय कुल्लू की पार्वती घाटी में एक सम्पन्न ब्राह्मण रहता था। कहते हैं कि उसके पास कुछ मूल्यवान सुन्दर रत्न और हीरे थे। युगधर्म के अनुसार राजा ने ब्राह्मण से ये रत्न मांगे—महाराज रणजीतसिंह ने भी तो अपने शरणागत मान्य अतिथि शाह शूजा से कोहेनूर हीरा हस्तागत किया था। कई बार मांगने पर भी ब्राह्मण आनाकानी करता रहा। एक बार मनिकर्ण में स्नान करने के लिए राजा जगतसिंह स्वयं पार्वती घाटी में गये और ब्राह्मण से रत्न देने का आग्रह किया। ब्राह्मण ने वापिसी पर देने का वचन दिया। परन्तु जब राजा ब्राह्मण के घर के पास वापिस आया तो ब्राह्मण ने अपने घर को आग लगा दी और सपरिवार उसमें जल कर मर गया। यह अत्यन्त भयावह घटना थी। राजा पर ब्रह्म-हत्या का पाप लग गया था। हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार ब्रह्म-हत्या से बड़ा और कोई पाप नहीं है। सब पापों का प्रायाश्चित है, पर ब्रह्म-हत्या का कोई प्रायश्चित नहीं है। ऐसे पापी के लिए तो रौरव नरक की यातना ही शेष रह जाती है। किंवदन्ति है कि उसके पश्चात राजा न खा सका और न पानी पी सका क्योंकि ब्रह्म-हत्या के कारण उसका भोजन व पानी रक्तमय हो जाता। किसी विद्वान ब्राह्मण ने बताया कि यदि अयोध्या से भगवान् रघुनाथ की मूर्ति लाई जाए और कुल्लू का राज्य भगवान् राम को समर्पित किया जाए तो राजा ब्रह्म-हत्या के पाप से मुक्त हो सकता है। ऐसा ही किया गया और तब से कुल्लू के राजा रघुनाथ जी के प्रतिनिधि के रूप में शासन चलाते रहे। सन् १८४१ में कुल्लू राज्य का पूर्णतय: रणजीतसिंह के राज्य में विलय कर दिया गया। सतरहवीं सदी से कुल्लू-दशहरे की परम्परा चली। कुल्लू के सभी देवी-देवता दशहरे पर आकर रघुनाथ जी के प्रति सम्मान व्यक्त करते हैं, रघुनाथ जी केवल मनुष्यों के ही शासक नहीं थे, बल्कि देवी-देवता भी उनके अनुशासन और छत्र-छाया में रहते थे। ये देवी-देवता कुछ तो पुराने बलशाली लोगों की प्रेतात्माएं हैं और कुछ पहाड़ों, नदियों, कन्दराओं, जलाशयों आदि में बसने वाली अदृश्य शक्तियों के प्रतीक हैं। वर्ष में एक बार सब को

प्रथा के अनुसार रघुनाथ जी के दरबार में अनिवार्यतः आना पड़ता था और कुछ-कुछ अभी भी आते हैं।

विरोध-प्रदर्शन के लिए आत्म-दाह करना एक असाधारण घटना थी। पीड़ित व्यक्ति का सन्ताप जब चरम अवस्था को पहुंचता होगा, तभी यह भयावह पग वह उठाता होगा। पर इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी परम्परा पुराने समय से चली आई थी। इस विरोध-प्रदर्शन में आत्म-क्लेश, आत्म-पीड़ा और आत्म-वेदना का तत्व अधिक होता था और हिंसा और पर-पीड़ा की भावना कम होती थी। यह भारत की पुरानी सांस्कृतिक परम्परा की देन थी जिसमें आत्म-वेदना से पर-वेदना को मिटाने की भावना निहित होती थी। गान्धी जी ने इसी परम्परा को आधुनिक युग में सत्याग्रह और अहिंसा के द्वारा पुनः प्रतिपादित किया।

विरोध-प्रदर्शन के लिए आत्म-दाह की प्रथा का संकेत बिलासपुर राज्य में भी मिलता है। राजा अमरचन्द के राज्य काल में गेहड़वीं के ब्राह्मणों में असन्तोष इस लिए फैल गया था कि राज्य ने कुछ निःसन्तान मरने वाले ब्राह्मण परिवारों की जमीन अपने अधिकार में ले ली थी। कदाचित् ऐसे परिवारों के निकटतम उत्तराधिकारी राज्य के इस कार्य को अनुचित समझते थे। इस असन्तोष को भड़काने में राजवंश के मियां काहनसिंह का भी हाथ था। गेहड़वीं के अतिरिक्त पन्तेड़ा और लुलहाण गांव के ब्राह्मणों ने भी राज्य द्वारा ऐसे अधिग्रहण के विरुद्ध अपना रोष प्रकट किया। विरोध-प्रदर्शन का ढंग इस प्रकार होता था : ब्राह्मण परिवार का एक व्यक्ति गांव के बाहर घास-फूस की एक झोंपड़ी बनाता और उसमें अपनी एक गाय, एक कुत्ता और एक बिल्ली के साथ नौ महीने तक वास करता। इसको 'जुग्गा-वास' कहते थे। यदि इस अवधि के अन्दर राजा उसकी मांग पूरी कर लेता तो वह जुग्गा छोड़ कर अपने घर वापिस चला जाता अन्यथा नौ महीने की समाप्ति पर वह झोंपड़ी को आग लगा कर सब पशुओं के साथ आत्म-दाह कर लेता। इन चार प्राणियों की हत्या का पाप राजा को लगता—ऐसी धारणा होगी। गौ-हत्या और ब्रह्म-हत्या से बढ़ कर और क्या जघन्य पाप हो सकता था ? इसी में समाप्ति नहीं थी—एक ब्राह्मण के आत्म-दाह के बाद दूसरा उसका स्थान ग्रहण करता और यह क्रम तथाकथित अन्याय की समाप्ति तक चलता। पर तब ऐसा नहीं हुआ : तब तक बिलासपुर राज्य में आधुनिक व्यवस्था लगभग कायम हो चुकी थी। उनको समझाने-बुझाने के लिए अधिकारी गये और न मानने पर उनको गिरफ्तार कर लिया गया। मियां काहनसिंह भी पकड़ा गया और उस पर दस हजार रुपये का भारी जुर्माना किया गया।

दिल्ली में सुलतानों के राज्य-काल में भी ब्राह्मणों के द्वारा जज़िया कर के विरुद्ध सुलतान के महल के सामने आमरण अन्न-शस्त्र व्रत करने की धमकी का उल्लेख मिलता है। जज़िया कर हिन्दुओं पर सुलतानों के शासन के आरम्भ में ही लग गया था। परन्तु ब्राह्मण इससे मुक्त थे। फिरोजशाह तुगलक ने ब्राह्मणों पर भी यह कर लगा दिया। फलतः दिल्ली के ब्राह्मणों ने सुलतान को उक्त धमकी दी। सुलतान को यह धमकी निःसन्देह हास्यास्पद और स्वागत योग्य लगी होगी। उसके महल के बाहर की ड्योढ़ी पर एक विशाल चबूतरे पर जल्लाद नंगी तलवारें लिये सदा तैनात रहते थे और प्रति दिन कुछ न कुछ विद्रोहियों और अपराधियों के सिर राजाज्ञा से काटे जाते थे तथा तीन दिन तक आम जनता को आतंकित करने के लिए वहीं पर प्रदर्शित किये जाते थे। ऐसे वातावरण में ब्राह्मणों के आत्म पीड़न का क्या प्रभाव पड़ना था ?

मध्य कालीन युग में और परवर्ती समय में पिछली शताब्दी तक व्यक्तिगत स्तर पर कुछ साधु और ढोंगी ब्राह्मण भोली-भाली, धर्म-भीरु और अन्ध विश्वासी पहाड़ी जनता को अपना कोप-भाजन बनाते थे। ये तथाकथित साधु और ब्राह्मण वांच्छित दान-दक्षिणा न मिलने पर शाप देने का दम भरते थे। अपना विरोध और रोष प्रकट करने के लिए कई बार अपना रक्त अपने कोप-भाजन परिवार के मकान पर छिड़क देते। यह अनिष्टकारक अपशकुन समझा जाता था, धर्म-भीरु, अन्ध विश्वासी लोग इससे भयभीत हो जाते थे। इस प्रकार के अभिशाप और अपशकुन से मुक्त होने के लिए, पूजा-उपचार और प्रायश्चित करना पड़ता था। जुब्बल राज्य में ऐसे लोगों, साधु, ब्राह्मणों को दण्डित करने का अधिकार केवल राजा को था। अन्य दण्डाधिकारी इनके विरुद्ध मुकदमें की सुनवाई नहीं कर सकते थे।

सेमवाल सदन,
इंजन घर, संजोली,
शिमला–६

●★●

निरमण्ड—जहां नरमेध यज्ञ होता था

—सुदर्शन वशिष्ठ

नदियां सभ्यताएं जनती हैं। विश्व की सभी प्रमुख सभ्यताएं नदियों के किनारे विकसित हुई हैं। जहां मैदानों में नदियां यौवन को प्राप्त होती हैं, वहां पहाड़ों में इनका शैशव का, कली का रूप रहा है। कली हमेशा अधिक कोमल, अधिक सुकुमार, अधिक चटकीली, अधिक सुगन्धित और अधिक रहस्यमयी होती है क्योंकि उसमें अंकुर का भाव भी होता है और बीज का भी। हिमाचल में रावी, व्यास, सतलुज, चन्द्रभागा की उपत्यकाओं में ये कली समान सभ्यताएं सुरक्षित रही हैं। सभ्यताओं के दुश्मन यहां तक नहीं पहुंचे। इन सुरक्षित सभ्यताओं में पत्ती दर पत्ती कोमलता, रंगीनी, सुगन्ध व बीज का भाव रहा है। ये आदि सभ्यतायें हैं—उद्गम स्थानों की और मूल की सभ्यताएं, जो समाप्त नहीं होती। अपने अन्तिम गांव तक, अन्तिम घर तक सुरक्षित रहती हैं। नदियों के किनारों की अपेक्षा उनकी उपत्यकाओं की सभ्यता अधिक सुरक्षित रही है। किनारों की सभ्यताएं जितनी जल्दी उठी हैं, उतनी ही जल्दी बाढ़ की तरह गिर भी गई हैं। उपत्यकाओं में नदियों ने वहां घाटी से लेकर शिखर तक सभ्यताओं को अपने गर्भ में छिपाये रखा है।

बात यहां व्यास की धरती के अन्तिम छोर की है जो सतलुज की पहली उपत्यका है। क्योंकि यह व्यास की सभ्यता का अन्तिम छोर है इस लिए सतलुज का पहला। एक तरह से दोनों का सन्धि स्थल है यह। कहने वाले इसे सतलुज की उपत्यका कहेंगे। सतलुल के दोनों ओर—एक ओर बाएं किनारे पर रामपुर बुशैहर—पुरानी रियासत और दूसरी ओर, दाएं छोर पर निरमण्ड—कुल्लू की अन्तिम सीमा। वेश-भूषा, रहन-सहन, बोल-चाल की दृष्टि से सतलुज के उस पार और इस पार में कोई विशेष अन्तर नहीं। अर्थात् कुल्लू की, व्यास की सभ्यता पर सतलुज की सभ्यता हावी हो गई है। यह बात आनी में नहीं है। आनी बाहरी सिराज का मुख्यालय है। सतलुज से भी दूर है। वहां जलोड़ी जोत से होकर भीतरी सिराज (वंजार) की सभ्यता प्रभावी हुई है। निरमण्ड और आनी के बीच पहाड़ों ने इस कुल्लूई संस्कृति को रोक लिया है। इस लिए निरमण्ड ने पार सामने सतलुज लांघ कर देखा है।

कुर्पन घाटी में बसा यह गांव लगभग चार हजार फुट की ऊंचाई पर है जो जनसंख्या की दृष्टि से बहुत बड़ा गांव है। हिमाचल में जहां कहीं-कहीं चार-पांच घर ही गांव कहलाते हैं, यहां चार-पांच सौ घर हैं। कुल्लू के बाहरी सिराज की निरमण्ड एक उप-तहसील है। सामने सतलुज के पार दत्तनगर से, जहां दत्तात्रेय जी का मन्दिर है, झूला पार कर पैदल निरमण्ड पहुंचा जा सकता है। रामपुर बुशैहर से तो बस द्वारा निरमण्ड से सम्पर्क है। यह बस आगे बागी पुल तक जाती है। शिमला से रामपुर के लिए सीधी सड़क है जो आगे किन्नर कैलाश तक से जाती है।

श्री खण्डेश्वर महादेव, पुरानी रियासत रामपुर बुशैहर, नीरथ, नगर, दलाश, खेखसु आदि सांस्कृतिक महत्व के स्थानों से घिरा यह स्थान अपने में ही बहुत सांस्कृतिक व ऐतिहासिक है।

नामकरण के अन्वेषण में दो मत उल्लेखनीय हैं : एक पौराणिक प्रसंग है कि भगवान शंकर सती को कन्धे पर उठाये चले जा रहे थे तो स्थान-स्थान पर देवी सती के अंग गिरते जाते थे। इन अंगों के गिरने के कारण उन-उन स्थानों पर अलग-अलग नामों से देवियों की स्थापना हुई जो एक ही देवी सती का रूप थीं। इस स्थान पर पहुंच कर देवी का मुण्ड गिर गया और यह स्थान 'निरमण्ड' या 'नरमण्ड' कहलाया। इस बात की पुष्टि में यहां अम्बिका देवी का मन्दिर है। दूसरा मत भी पौराणिक आख्यान पर आधारित है। कहा जाता है कि भगवान परशुराम जी ने यहां नरमेध यज्ञ किया। 'निरमण्ड' या 'नरमण्ड'—नरमेध का अपभ्रंश है। पुष्टि इस प्रसंग की भी हो जाती है। परशुराम जी का मन्दिर खुलने के लिए यहां एक महायज्ञ किया जाता है जिसे 'भुंडा' कहते हैं। इस भुंडा में नरबलि की एक ऐसी परम्परा थी जिसे नरमेध यज्ञ का ही प्रकारान्तर कहा जा सकता है।

निरमण्ड में एक छोटे-से दायरे में ही अनेक मन्दिर हैं। और मन्दिर भी साधारण नहीं बल्कि अपनी मूर्ति-कला व भित्ति चित्रकला के बेजोड़ नमूने। यहां के पत्थर ही वास्तव में पौराणिक हो गये हैं।

सब से ऊपर शिव मन्दिर है। मन्दिर के बाहर नन्दी बैल के साथ शिव लिंग है। दूसरी ओर बाहर ही भगवती, चतुर्भुज नारायण, सूर्य आदि की सात पाषाण मूर्तियां हैं जो अपनी उत्कृष्ट कला के कारण बरबस ध्यान खींचती हैं। भीतर का शिव लिंग लिंगाकार न होकर प्राकृतिक पत्थर का है जो अपने मूल रूप में ही होगा, ऐसा प्रतीत होता है। मन्दिर के साथ एक छोटा-सा तालाब है।

लोक कथा है कि पहले इस स्थान पर झक्खड़ (झाड़-झंखाड़) हुआ करता था। (ऐसा अब भी प्रतीत होता है कि यह स्थान वीरान रहा होगा।) वहां पशु चराते थे। एक गाय उस पत्थर पर दूध की धाराएं गिराती थी। जब सायंकाल उसे दुहने लगते तो थन खाली होते। अन्त में ग्वालों ने पता लगा लिया कि गाय तो अमुक पत्थर के ऊपर दूध की धाराएं गिराती है। बस फिर इस स्थान की मानता होने लगी। मन्दिर बन गया। अब भी ग्रामीण वहां गायों के दूध की धारायें स्वय पहली बार प्रयोग में लाने से पूर्व अर्पित करते हैं।

शिव मन्दिर से थोड़ा नीचे चण्डी मन्दिर है। यहां चण्डी, शिव-पार्वती आदि की मूर्तियां वास्तु-कला की दृष्टि से अनूठी हैं। चण्डी मन्दिर के साथ ही एक शिव मन्दिर है जो काफी मिट्टी में धंस गया है। यहीं नीचे एक अन्य छोटा-सा मन्दिर है जो खण्डहर हो गया है। इसके अन्दर रखी एक मूर्ति भी समय के प्रभाव से अस्पष्ट हो गई है। इस छोटे से मन्दिर के आगे का तालाब सूख गया है।

परशुराम जी का मन्दिर गांव के ठीक सिरे पर है। इस मन्दिर के साथ ही ऊपर छोटे-छोटे मन्दिर हैं जिनकी मूर्तियां, पत्थरों पर की गई नक्काशी बहुत सुन्दर है। परशुराम जी का मन्दिर बन्द है। मन्दिर का मुख्य दर खुला रहता है। भीतर तीन छोटे-छोटे दरवाजे हैं जो पुरानी किस्म के

सांकलों से जकड़े हुए हैं। इनमें बीच का दरवाजा मन्दिर का है जो बासठ के बाद आज तक नहीं खुला। आस-पास के दरवाजों में एक में भांडा-बरतन रखा जाता है और दूसरे में महायज्ञ के समय खाद्य सामग्री। बाहर एक और मन्दिर है जिसमें एक हवन कुण्ड है जहां महायज्ञ के समय हवन होता है। हवन कुण्ड के साथ ही ऊपर की ओर कुछ मूर्तियां पड़ी हैं।

परशुराम जी का मन्दिर खुलने के लिए महायज्ञ, जिसे 'भूंडा' कहते हैं सन् बासठ में हुआ था। भूंडा का आयोजन आसान नहीं है। इसके लिए बहुत अन्न-धन की अपेक्षा रहती है। उस समय सब लोगों को मन्दिर की ओर से भोज होता है। भुंडा से पहले हवन होता है जो सालों व महीनों तक चलता है। बासठ के भूंडा में यह हवन छः मास तक चला था। जिस दिन परशुराम जी की मूर्ति दर्शनों के लिए निकाली जाती है उसी दिन एक आदमी को रस्से द्वारा निर्मण्ड के ऊपर वाली पहाड़ी से नीचे शिव मन्दिर के पास लुढ़काया जाता है। ऊपर से नीचे तक निश्चित स्थान पर मजबूत रस्सा बान्धा जाता है और आदमी को रेत आदि की बोरी पर बिठा दिया जाता है। घोड़े पर बैठे आदमी की तरह इस आदमी को ऊपर से नीचे छोड़ दिया जाता है। नीचे पकड़ने के लिए भी व्यवस्था की जाती है।

यह आदमी 'बेडा' जाति का होता है। इसी जाति का पुरुष ऊपर से लुढ़काया जाता है। उस वक्त उसे 'ज्याली' कहते हैं। ज्याली बेडा जाति से ही होता है। अकसर ज्याली मरता नहीं है। फिर भी उसके परिवार के नाम पर्याप्त जमीन की होती है ताकि उसके मरने के उपरान्त परिवार का भरण-पोषण हो सके। ऊपर से नीचे बान्धने को रस्सा यह आदमी स्वयं तैयार करता है। जब ऊपर से इसे नीचे छोड़ा जाता है तो इसके परिवार वाले पत्नी आदि उसी तरह विलाप करते हैं। जैसे मृत्यु पर किया जाता है। नीचे पहुंचने पर ज्याली जिस किसी चीज को हाथ लगा दे वह उसी की हो जाती है।

बेडा जाति का एक ही परिवार निरमण्ड में है। इस जाति का विवाह भी इसी जाति में हो सकता है, अन्यत्र नहीं। कुल्लू की ओर इस जाति को 'नौड़' कहते हैं। यहां भी ये लोग इसी प्रकार के कृत्य के कारण देवताओं से सम्बद्ध है। यद्यपि यहां इस प्रथा की प्रक्रिया भिन्न है। इस जाति के लोग बहुत ही कम पाए जाते हैं। कुछ परिवार कुल्लू में हैं और कुछ मण्डी में। 'नौड़' का अर्थ 'नौर' से भी लिया जाता है अर्थात् नर। समग्र अर्थ में नर-बलि।

सन् बासठ के भूंडा में आदमी नहीं डाला गया था बल्कि आदमी के स्थान पर बकरा डाला गया था। उससे पहले का भूंडा २८ साल के अन्तराल के बाद हुआ बताते हैं और उससे भी पहले १६ साल के बाद। इन में भी बकरा ही डाला गया। आदमी डालने की प्रथा पुरानी हो गई है। यह प्रथा सम्भवत: १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में ही अंग्रेजों द्वारा बंद करवा दी गई थी। कुल्लू की ओर अब भी 'नौड़' मरता है। एक विशेष मेले में जिसे 'काहिका' कहते हैं, नौड़ मारा जाता है। कुल्लू के ऊपरी इलाकों में तीर से मारने का प्रचलन है जबकि निचले इलाकों में यह कार्य तीन बार चरनामृत पिला कर किया जाता है। देवता के स्थान से कुछ दूरी पर ले जाकर नौड़ को तीन बार चरनामृत पिलाया जाता है और वह मर जाता है। फिर उसे लाश की तरह उठाकर देवता के पास लाकर उसकी परिक्रमा करवाई जाती है। फिर वह पुनः जी उठता है। नौड़ बेहोश सा हो जाता है। एक काहिके में एक नौड़ एक बार मरने पर दोबारा जीवित नहीं हो सका ऐसा

भी सुना जाता है। भूंडा में तो बकरा डाला जाने लगा किन्तु रामपुर की ओर आदमी डालने की प्रथा काफी बाद तक जारी रही।

यह भूंडा वास्तव में नरमेध यज्ञ ही था और ज्याली डालने की प्रथा नर बलि की।

परशुराम जी के मन्दिर के नीचे की ओर अम्बिका का मन्दिर है। इस मन्दिर के मुख्य द्वार पर की गई नक्काशी देखने योग्य है। भूंडा के आयोजन से देवी अम्बिका भी सम्बद्ध है। यहाँ अम्बिका के पहले स्थापना हुई या परशुराम की – इस बात पर भी लोकास्था में मतभेद है। एक मत के अनुसार परशुराम जी ने ही यहाँ देवी की स्थापना की जबकि दूसरे के अनुसार भगवान शंकर द्वारा सती को कन्धे पर उठाए भटकने के समय मुंड गिरने की बात अधिक पौराणिक है।

शिव और शक्ति के होते हुए भी यहां महायज्ञ परशुराम जी के सौजन्य से होता है, इसमें दो बातें नहीं हो सकतीं। परशुराम जी का यह स्थान भारत भर के परशुराम जी से जुड़े स्थानों में महत्वपूर्ण है यद्यपि इस का अधिक प्रचार नहीं हो पाया है। यहां यह मन्दिरों की पुरी काशी या हरिद्वार की भांति प्रसिद्ध नहीं है जहाँ हजारों श्रद्धालु श्रद्धा के फूल चढ़ाने आते हैं। पहाड़ों को लांघ कर सैंकड़ों मील तय कर यहां कोई भूला-भटका ही पहुंचता है जिसकी दृष्टि में श्रद्धा नहीं होती कुछ और ही होता है। मन्दिरों के लिए आपका कोई साधन नहीं। सब ग्रामीणों पर ही निर्भर है।

जिला भाषा अधिकारी,
कुल्लू

—०:०—

सिरमौरी लोक-नृत्यों का वर्ष की ऋतुओं से सम्बन्ध

–विद्यानन्द सरैक

यह सुन्दर एवं मनमोहक हिमाचल प्रदेश की कलात्मक पावन धरा स्वयं में ही संगीतमयी अनूठी छवि निखारे हुए है। कल-कल करती नदियों, सुर अलापते झरनों, नृत्य करती लत्तिकाओं से शोभित प्रत्येक वादी इतिहास की आदि पुस्तिका, एवं बसने वाला मानव एक लेखक है, जिसने इस प्राकृति में बिम्बित इतिहास को लोक-संगीत के माध्यम से जीवित रखा है। लोक-नृत्य व गीत इस इतिहास की लिपि रही है। इस भूत, वर्तमान, भविष्य के इतिहासकार ने अपना नाम न अरस्तु न प्लेटो, न ही आचार्य चतुरसैन आदि ही बताया, अपितु केवल लोक-कलाकार मात्र की संज्ञा लेकर सन्तुष्ट हुआ और अगली पीढ़ी से, बिना अहंकार के इस सांस्कृतिक सम्पदा को सुरक्षित रखने का विनम्र निवेदन किया है।

धार्मिक, राजनैतिक प्राकृतिक, सांस्कृतिक चित्रण कलाकारों की सुन्दर अभिव्यक्ति रही है जिसके पटल पर भूत की गहराइयां, वर्तमान की सजगता भविष्य के लिए सुथरे समाज निर्माण की मूर्त कल्पना मनोहारी क्रीड़ाओं से चित्रित की है। रीति रिवाज, रहन सहन, दैनिक जीवन से लेकर वार्षिक तक, जन्म से मृत्यु तक संगीत के माध्यम से वर्णित किए गये हैं। यहां सिरमौर जनपद में लोक-नृत्यों का वर्ष की ऋतुओं से सम्बन्धों का एक अनमोल खजाना प्राप्य है। वर्ष के विभिन्न ऋतुओं का स्वागत नृत्यों की मनमोहक भावाभिव्यक्ति से किया गया है। जिससे उस ऋतु की महिमा नृत्य मुद्राओं से दर्शक का मन मुग्ध कर देती है। साथ ही अतीत से आज तक के सामाजिक समानता पर भी दृष्टि डालने के लिंए भावी पीढ़ी को प्रेरित करती है।

ऋतु के आगमन पर सभी लोग जो लोक-कलाकार भी हैं स्वच्छन्द भावनाओं से प्रेरित आत्म विभोर अनूठी पुरातन नृत्य-शैली, में मौसम का रंग स्वयं में छिड़कते झूम उठते हैं। इन नृत्य मुद्राओं में वर्ष से सम्बन्धित ऋतु की अभिव्यजना सुन्दर एवं मनोहारी कल्पना की प्रतीक है। वर्ष की प्राकृतिक कठिनाइयां, सरल समस्याएं सुलभ ऋतुओं का यदा कदा तीव्र एवं भीषण प्रकोप मनमोहक लगता है। यही कारण है कि कड़ी मेहनत, कठिनाई का जीवन, दुर्गम प्राकृतिक बाधाओं के होते हुए भी श्रमिकों को आनन्दित करना आया है। फलस्वरूप प्रत्येक पहाड़ी का हृदय कोमल भावनाओं का भण्डार है।

इस प्रकार जब इस सुन्दर धरती को बसन्त अपनी रंग बिरंगी पिचकारी की फुआर से नहलाता है, मन्द-मन्द समीर में फूलों का यौवन भौंरे, मधुमक्खी, तितलियां स्वर नाद करते, चूमते, मस्ती में नृत्य करते हैं और ऋतुओं के राजा का शासन प्रसन्नता, उन्माद, उच्छृंखलता, अनूठे

आनन्द में डूब जाने वाली क्रीड़ाओं को आदेश देता है, खेतों में अनाज के सीटे मेहनत के परिणामों का संकेत देते हैं, तब इस वर्ष के शैशव काल में लोक ताल 'रथेवला' जन-जन को नाचने गाने आत्म विभोर हो झूमने का सविनय निमन्त्रण देता है। दो तीन गांव के मध्य खुले मैदान में बीशू का आयोजन किया जाता है। ग्राम देवता का झण्डा जिसे 'छड़ी' कहते हैं पूरे विधि विधान से उस स्थान को ले जाते हैं। ढोल, शहनाई और नक्कारे पर डंका लगाते, करनाल हरनसिंगा सहित रथेवला बजता है। लोग नाचते ललकारते देवता की पताका मैदान में बने स्थान पर गाड़ देते है। साज पर बजता हुआ रोद्रताल पास पड़ोस के सभी लोगों को बीशू का निमन्त्रण देता है। हजारों वर्ष पुराने जन-जीवन की झांकी नृत्य मुद्राओं से झलकती है। तीन दिन तक लोग नाचते गाते झूमते हैं। यह आयोजन नवरात्रे में 'जात' से, बैशाख में बीशू के रूप में ज्येष्ठ के पहले सप्ताह तक किया जाता था। कई स्थामों में इसे 'प्लेच' भी कहते हैं। मान्दर का बीशू, कुफटा, धामला, कोटवा, चाम्बीधार, छवरोण का बीशू तथा कुफर शाय की प्लेच, कुफर लेऊ की जात इस मौसम के सुन्दर आयोजन आज तक प्रसिद्ध हैं। लोग टांगों पर मोटे पाजामे, खास किस्म के बूट पहनते हैं और धनुष तथा उस पर बिना लोहे के तीर का प्रयोग केवल टांगों पर निशाना साधने के लिए करते हैं। अगला व्यक्ति टांगों का नृत्य करता है और प्रतिस्पर्धी निशाना लगाता है तत्पश्चात् दोनों नृत्य करते हैं। खेल आरम्भ होने से पूर्व अलग दल नाचते ललकारते मैदान में प्रवेश करते हैं। सिरमौर मां रेणूका तथा परशुराम की क्रीड़ा-स्थली है। परशुराम के हथियार 'परसे' का विशेष प्रदर्शन नर्तक करते हैं इसे यहां 'डागरु' कहते हैं। लोग हाथ में डागरु (परसा) लेकर झूम-झूम कर ठोडा नृत्य करते हैं। यह गीत गुनगुनाया जाता है :—

ओरो दे मेरो डागरु डागरु भाई डागरु।
मेरे जाणा जातरु जातरु भाई जातरु।

बीशू का आयोजन वर्ष के लिए तैयारी हेतु मास ड्रिल थी। वसन्त का स्वागत नृत्य द्वारा किया जाता था। लोग कठिन परिश्रम की तैयारियां इसी सुन्दर ऋतु में आकर्षक नृत्यों का आयोजन कर सम्पन्न करते रहे है। परन्तु महाभारत काल के पश्चात् ठोडा नृत्य वैमनस्य में बदल गया। अब पांडव समर्थक पाशड़ों तथा कौरव समर्थक शाठड़ों का बीशू में द्वन्द्व होना शुरू हो गया। दोनों कनेत राजपूत दल ललकार-ललकार कर नृत्य तथा ठोडा खेलते हैं। नृत्य की शैली पुरानी और परम्परा संजोए हुए हैं। परन्तु कभी खेल लड़ाई में बदल जाता है। सामूहिक रूप से चाहे महाभारत काल से पूर्व या पश्चात् ठोडा नृत्य वसन्त की रंगीनियां की तरह झूम-झूम कर स्वच्छन्दता एवं उल्लास से पूर्ण वर्ष का अभिनन्दन करता आया है।

ज्येष्ठ और आषाढ़ के मास फसल कटाई और बुआई के होते हैं। अषाढ़ के अन्त तक हरियाली पहाड़ों को अपनी चादर में समेट लेती है। हवाएं नृत्य करती लतिकाएं, हिलोरे खाती घास से भरी ढलानों को चूम कर गद्गद् हो बरस पड़ती हैं। नदियों का यौवन उमड़-उमड़ कर दूर अपने प्रेमी सागर से मिलने के लिए पागल करने लगता है। पेड़ पौधों संग बेलें मोस फरन सब एक कल्पना की पंक्ति केवल हरियाली का स्वरूप धारण कर बैठती है। एक ही बात कह सकते हैं हरियाली—हरियाली का अपभ्रंश स्वरूप 'रिहाली' यहां एक त्यौहार मनाया जाता है।

आषाढ़ और सावन की संक्रांति 'रिहाली' की साजी कह कर मनाते हैं और रिहाली रासा, माला इस हरियाली के मौसम का सुन्दर नृत्य है। यौवन में एक जिज्ञासा हर युवा के हृदय में होती है कि युवक-युवती का हाथ थामे या सहगामी बन आगे बढ़े, यही भावमाला नृत्य में बिम्बित है। युवक-युवतियां, बूढ़ा-बच्चा सभी एक लाईन में खड़े होकर इस ऋतु की सुन्दर छटा की भांति माला नृत्य करते हैं। ढोल, शहनाई, नक्कारा, करनाल वाद्य वृन्द हैं जिस पर नाटी ताल जो आठ मात्राओं और पांच ताली में बजता है। सभी नर्तक एक साथ कदम से कदम मिलाते झूमते पूरे दिन भर नृत्य करते हैं। इस प्रकार ढोल पर बजती नाटी नक्कारे के ताल का सहारा लिए शहना: के सुन्दर आलापों से मुग्ध हो करनाल की स्वच्छन्दता में घूमते नर्तक वर्षा के इस मौसम की आनन्दानुभूति नृत्य के मनमोहक प्रदर्शन से करते हैं।

दीता जीपे झलारा पिरणू एता गोपिए मोड़ोदा।
चीटा तेरा गरारा दूरो पछेण्द गोपिए मोड़ोदा।

ऐसे कितने ही पुराने नये गीत माला में नाटी गाकर नाचने वाले नर्तकों को सावन की नदी की तरह लहरों में हिलोरे देते मन्द-मन्द हवा में हिलाती लतिकाओं पेड़ पौधों, बेलों के सामूहिक रूप से झूमती लहराती हवाओं के रेंगने की साकार कल्पना करते हैं। नर्तक मुग्ध होकर बीसियों साथियों सहित मस्त होकर नाचते हैं यही नहीं दर्शक का हृदय भी झूम उठता है। लोईया, खड़ी टोपी पहने पुरुष रंग बिरंगे कुर्त्ता, चूड़ीदार पाजामा व टाठू ओढ़े महिलाएं माला नृत्य कर हरियाली की आनन्दानुभूति करते हैं। पछाद में ठाण्डीधार और रेणुका में गिलओ की रिहाली ऐसे ही समय के सुन्दर आयोजन थे। सावन का नीर धरती को पखारे शरद के सुहावने ऋतु के निखरे आगन में जनजीवन को धकेलता है।

तुलसी जी ने चौपाई में ऋतु का वर्णन कितने सुन्दर ढंग से किया है—

पंक न रेनु सोह असी धरनी,
जिमी निति निपुण नृप की हो करनी।

निश्चय ही ये ऋतु सुन्दर और अनूठा आनन्द प्रदान करता है। हल्की-हल्की शीत निर्मल तारों से भरा आसमान प्रकृति को अलंकृत करता है। बच्चे जवान नवरात्रे के पश्चात् 'हूशू' नृत्य करते हैं। रात्रि को संध्या के पश्चात दयार की पतली-पतली लकड़ियों के छोट-छोटे बण्डल एक लम्बी बेल के तने में बांध कर जलाते हैं या सूखे घास तथा चीड़ के फल जिसे 'कावला' कौटू कहते हैं बेलों से बांधकर आग लगाते हैं और फिर हाथ से नचाते हैं। कोई भी ताल के लिए वाद्य वृन्द नहीं होता। गीत गाते हैं—

टूरा लूरा भागो पाणी टूरा।

ऊंची-ऊची धारों पर ये आग का नृत्य दूर से बड़ा ही सुन्दर लगता है। किंवदन्ति है कि विजय दशमी के पश्चात अर्थात् राम की लंका विजय की खुशी में यह आयोजन किया गया था। ताकि आग की इन फूलझड़ियों से प्रकृति की काली रात मुस्करा जाए। परन्तु कुछ भी हो यह

शरद का आनन्द नृत्य विधाओं से लोक जीवन का एक अंग रहा है। इस तरह फसल की कटाई बुआई से आसौज के मास में निवृत हो शाम हूशू नचाते जब दिवाली आती है तो लोक कलाकार 'स्वांगटीगी' जो लोक ताल है में झूम-झूम कर नाचते हैं। रात को एक स्थान पर आग जलाई जाती है जिसे 'घैना' कहते हैं लोक कलाकार 'हुड़क' जो एक लोक वाद्यहै के साथ बजाते हुए स्वांग करते हैं। तीव्र गति का नृत्य किया जाता है शीत से बचाव हेतु भी यह नृत्य सुन्दर आयोजन है। नाटी गीत इत्यादि भी मनोरंजन के लिए नाचे जाते हैं। लक्ष्मी पूजन की रात भर करियाला किया जाता है। करियाला एक लोक नाट्य है। घैना' जो आग जलाई जाती है नर्तक इसके गिर्द नाचते तथा स्वांग करते हैं करियाला का आयोजन बड़ी दिवाली तक गांव-गांव में निर्धारित रात्रि को किया जाता है। नर्तक स्वांग की तैयारी पहले करते हैं। करयालची के अलग-अलग गांव में अलग-अलग दल होते हैं। करियाले में दर्शक स्वांग करने वाले पर दलीलें मजाक के रूप में देता है। हाजिर जवाब स्वांगी सामायिक उत्तर व्यंग के देकर जन समुदाय को हंसा डालता है। स्वांग अधिकतर सामाजिक चेतना के लिए व्यंग भरे सुन्दर आकर्षण होते हैं। साधु, नट, साहूकार, भीखमंगे, जोगी जोगन (जो दुराचारी की स्त्री से सम्बन्धित है), साहब इत्यादि स्वांग किये जाते हैं। परन्तु शरद का आदि स्वरूप नृत्य के दिन में होने वाले नृत्यों में निखरता है। शेर, गीदड़ के मुखौटे लोक-नर्तक मुंह पर पहनते हैं। ये लकड़ी के बने हुए होते हैं। भईया दूज को गांव-गांव नर्तक नाचते हुए। स्वांगटी ताल में झूम-झूम कर नाचते हुए आते हैं। भाभी, ननदें, अखरोट इन मुखौटों के मुंह में डालने का प्रयास करती हैं। प्रत्येक महिला शेर वाले मुंह में डालने का प्रयास करती है। यदि गीदड़ के मुंह वाले मुखौटे में पड़े तो हंसी मजाक होती है। इस नृत्य के पीछे यह भाव भी छिपा है कि प्रत्येक महिला अपने भाई को शेर की तरह बहादुर देखना चाहती है। उसकी मूक कल्पना महान संघर्ष के लिए अपने किसी भी सिंह समान भाई को कोमल भावनाएं अर्पित करती है। मुखौटे पहने नर्तक ढोल नक्कारे की ताल में झूमते हैं। ये सून्दर एवं मनमोहक कार्यक्रम शरद का निखरा और परिष्कृत स्वरूप कलाकारों के सधे हुए नृत्यों से मन्त्र-मुग्ध कर देता है। हुड़क बजाने वाले ऐसे कितने ही ऐतिहासिक व सामायिक गीत गाते हुए नृत्य एक पंक्ति में कभी-कभी स्वच्छन्दता में करते रहते हैं।

कंइये शुको राजेया गिरेयो रो पाणे।
घोड़ें पीश्रो हाथिए गिरेयो रो पाणे।

इस प्रकार शरद के निर्मल निखरे तथा सुहावने मौसम का सुथरा चित्रण लोक नर्तक का सुन्दर और आकर्षक प्रदर्शन है। आत्म विभोर हो नर्तक ऋतु का झूम कर स्वागत करते हैं। वर्ष की थकान से जन-जन को मानसिक व शारीरिक विश्राम भी मिलता है यहां के लोक जीवन में प्रकृति की सौंदर्यानुभूति लोक नृत्यों के द्वारा समय काल का चित्रण करते एक अलौकिक सुख शांति प्रदान करती है। जिसके परिणाम स्वरूप यहां के वासियों के मन में जन-जन हेतु प्रेम सहानुभूति श्रद्धा दया कितनी ही कोमल भावनाएं विद्यमान हैं। समय का सदुपयोग सुन्दर शैक्षणिक पद्धति के आधार पर किया जाता रहा है।

अब वर्ष का अन्त पतझड़ का मार्गशीर्ष मास में आगमन लोक नृत्य के आदिकालीन सम्बन्धों से जुड़ा हुआ है। दीपावली के उपरान्त पूर्णिमा पश्चात् जो आमावस्या आती है वह बूढ़ी दिवाली

के नाम से यहां प्रसिद्ध है। लोक नर्तक बुढ़ापे का सुन्दर अभिनय बूढ़ा गाकर लम्बी लय में केवल नक्कारे के धीमे डंके के ताल क्रम से हल्का नृत्य करते पतझड़ के साथ वर्ष का जीवन सुन्दर एवं मनमोहक ढंग से पूरा करते हैं —

मोल् री मोलाइए मोलाइऐ मोल् केरे मोलाए।

वास्तव में ऐतिहासिक गीत 'हारे, खाड़ा' इत्यादि बूढ़ी दिवाली के गीत हैं। लम्बी कतार में नर्तक नक्कारा कन्धे पर लटकाये कमर को हिलोरे देते ऋतु का अभिनन्दन कर वर्ष को विदा देते हैं। दिन के समय लोग गांव की चौपाल में नृत्य आनन्द लूटते हैं। किसी पुरानी घटना का हार के रूप में वर्णन अगली पीढ़ी को शिक्षा का एक सरल तरीका भी रहा है। इस प्रकार वर्ष का जीवन ऋतुओं के आनन्द में प्रसन्नता का अभास करते पूरा किया जाता है। प्रकृति अपने पेड़, पौधों, बेलों पर लगे फूल, फल, पत्तों के गहनों को छीन लेती है। हरियाली का सौन्दर्य बूढ़ापे में धक्के खाते वर्ष की तमाम सम्पत्ति से खत्म होने लगता है परन्तु लोक नर्तक बूढ़ा नृत्य में नव वर्ष की सुखद कल्पना करते नाटी रात्रि को गीत मुजरा करके प्रसन्नता के हिलोरों में झूम-झूम कर नाचता है। सुन्दर सपना उज्ज्वल भविष्य पूरे वर्ष की थकान को पीछे धकेल कर दर्शक नर्तक का एक ही उद्देश्य है।

ये लोक इतिहास जैसे समाप्त होता जा रहा है। पाश्चात्य सभ्यता प्रभाव तथा दिशाहीन शिक्षा पद्धति के कारण इस लोक जीवन को असभ्य समझा जा रहा है। वास्तव में सही मूल्यांकन गहन अध्ययन शिक्षित लोगों के लिए इस क्षेत्र में आवश्यक है। ऊपरी आवरण कुछ असभ्यता दर्शाता है परन्तु मूलत: हमारी लोक संस्कृति पुरानी और सभ्यता के सुथरे काल की परिचायक है। जिस का वर्णन केवल लोक नृत्य संगीत की मूक अभिव्यंजना में ही सुलभ है। समय काल की छाप पीछे हटा हमें पैनी दृष्टि मूल सिद्धान्तों पर डाल कर ही लाभ पहुंचेगा। जिस के परिणाम देश प्रदेश पूरे मानव समाज के लिए हितकारी हो सकते हैं। दया, प्रेम, सहानुभूति, कर्तव्य प्रणयता, समय का सदुपयोग ये कितने सरल तरीके से जीवन संग जोड़े जा सकते हैं।

गांव व डाकघर देवठी,
बरास्ता फागू.

स्पिति के गोम्पे

—बलराम आई०ई०एस०

हिमाचल प्रदेश में शायद स्पिति ही एक ऐसा स्थान है जहां का हर प्रौढ़ व्यक्ति हर समय माला फेरते हुए तथा कुछ गुनगुनाते हुए से नजर आता है। अगर किसी कारणवश वे माला फेरने की स्थिति में न हो, तब भी वह "औम मने पदमा हुम्" मन्त्र को जपते हुए नजर आता है। इस मन्त्र का स्पिति के लोगों के ऊपर इतना प्रभाव है कि वहां का हर घर एक गोम्पा होने का अहसास देता है, और हर व्यक्ति बहुत धार्मिक और परम पिता परमेश्वर के बहुत नजदीक।

स्पिति के प्रमुख गोम्पे कीह, ताबो, किब्बर और डंखार गांवों में स्थित हैं। कीह गोम्पा स्पिति का सब से बड़ा गोम्पा है। यह स्पिति नदी के बायें ओर कीब्बर और काजा गांवों के मध्य स्थित है। यहां पर सैंकड़ों लामाओं को प्रशिक्षण मिलता है। कीह गोम्पा धार्मिक ग्रन्थों और भित्ति-चित्रों के बहुमूल्य संग्रह के कारण प्रसिद्ध है। दूर से देखने पर यह गोम्पा एक पहाड़ी किले जैसे लगता है। एक पहाड़ी टीले पर स्थित होने के कारण काफी दूर से ही यह गोम्पा दिखाई देता है। इस गोम्पे में बहुत सारे कमरे और गलियारे हैं जो तंग और अन्धेरी सीढ़ियों से मिलाये हुए हैं। १९ जनवरी १९७५ के दिन आये भयंकर भूकम्प ने इस गोम्पे को बहुत नुकसान पहुंचाया है।

इस गोम्पे का 'दानव नृत्य' काफी प्रसिद्ध है। संगीत के लिए कई प्रकार के वाद्य-यन्त्र गोम्पे में ही उपलब्ध होते हैं जिन में से मुख्य तांबे के नरसिंह-नुमा वाद्य-यन्त्र हैं जिन्हें फूंक मार कर बजाया जाता है। इसका नरसिंह से मुख्य अन्तर यह है कि यह उपरोक्त के समान टेढ़ा-मेढ़ा नहीं होता है। इसकी लम्बाई छः-सात फुट होती है। इसके अतिरिक्त शहनाई, ढोल, नगाड़े तथा करताल (Cymbal) इत्यादि भी इस नृत्य के दौरान प्रयोग में लाये जाते हैं जो कि सभी गोम्पे में ही प्राप्य होते हैं।

इस नृत्य की विशेषता यह है कि नर्तक मुखौटे पहन कर नाचते हैं, सब से पहले अनोखे मुखौटे पहने दो नर्तक दर्शकों के सामने आते हैं। ये नर्तक रेशम की ढीली-ढाली चोगानुमा कीमती पोशाक पहने हुए होते हैं जिस में सुनहरी गोटा-किनारी का काम भी किया हुआ होता है। इसके अतिरिक्त इन चोगों के ऊपर कई प्रकार के काल्पनिक दानवों का रूप कशीदाकारी से चित्रित किया हुआ होता है। मुख पर डरावने से मुखौटे और शरीर पर इस चोगे के कारण शरीर का एक अंग भी दिखाई नहीं देता है। अतः ऐसा लगता है कि वे मानवीय नर्तक न होकर कोई दानव ही न हों। हाथों में छड़ी लिए पहले वे धीरे-धीरे से कदम चलाते हुए नाचते हैं। थोड़ी देर के बाद दो नर्तक और आकर उनका साथ देते हैं। वे भी उसी प्रकार से मुखौटे

इत्यादि पहने हुए होते हैं। परन्तु इन दोनों के हाथों में छड़ी के स्थान पर गंड़ासी से कुछ मिलते-जुलते से हथियार होते हैं। इन दोनों के आ जाने से नाच की गति में कुछ और तेजी आ जाती है। कुछ देर के बाद दो नर्तक और आकर उन चार नर्तकों का साथ देते हैं। इसके उपरान्त न केवल संगीत की गति में तेजी आती है बल्कि वे छः नर्तक भी बहुत तेजी से नाचते हुए गोम्पे के आंगन के एक कोने से दूसरे कोने आते जाते हैं।

मुखौटे पहने हुए ये नर्तक प्रेतात्माओं के प्रतीक माने जाते हैं। इस प्रकार से हम देखते हैं कि यह नृत्य भी लाहुल के चन्द्रा और भागा वादियों में नाचे जाने वाले 'छम' नृत्य से मिलता जुलता है,† जिसका उद्देश्य भी 'बुराई के ऊपर सच्चाई की जीत' दर्शाना होता है। नर्तकों के इन दानव रूपी मुखौटों के धारण करने के कारण कई लोग इसे 'दानव नृत्य' का नाम भी देते हैं जो कि युक्ति संगत नहीं लगता क्योंकि इसके नर्तक हमेशा ही गोम्पे के लामे होते हैं जो कि वहां के लोगों के धार्मिक गुरु होते हैं, और यह नृत्य सामान्तया 'गुइ थोर' त्यौहार के समय ही नाचा जाता है।

'गुइ थोर' साधारणतया नवम्बर महीने में मनाया जाता है जबकि आस-पास के लोग अपने नज़दीक के किसी गोम्पा में इस धार्मिक उत्सव को मनाने हेतु इकट्ठे होते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि किसी समय धरती पर दानवों का बोल-बाला था। देवी-देवते उनको खत्म करने के लिए कई प्रकार के रूप धारण करके स्वर्ग से धरती पर उतरे और उसी रूप में उनसे लड़ाई लड़ी तथा उनको खत्म किया। अतः आज के नर्तक विभिन्न प्रकार के मुखौटे पहन कर नाचते हैं और नाचते समय उनकी अभिव्यक्ति अस्त्र-शस्त्र चलाने वालों की सी होती है। 'गुइ थोर' उत्सव आने वाले साल की शुभ कामनाओं के लिए भी मनाया जाता है। यहां यह भी कह देना उचित होगा कि ताबो गोम्पा में 'गुई थोर' के स्थान पर हर चौथे साल 'चखर त्यौहार मनाया जाता है।

हिमाचल प्रदेश का अजन्ता अर्थात् ताबो गोम्पा, ताबो नामक गांव में स्थित है जिसकी समुद्र तल से ऊंचाई लगभग ६६१३ फुट है, १६ जनवरी, १९७५ के भूचाल के कारण इस गोम्पे को भी बहुत नुकसान उठाना पड़ा। दिवारों में दराड़ें पड़ जाने के कारण अनगिनत भित्ति-चित्र नष्ट हो गये हैं। ताबो एक प्राचीन गांव है जिसकी आबादी १९६० की जन गणना के अनुसार मात्र १४० थी। ताबो गोम्पा भी स्पिति नदी (जिसे कि वहां के लोग पिति नदी कह कर पुकारते हैं) के बायें ओर स्थित है। इस गोम्पे में लगभग ५० लामे रहते हैं। यह गोम्पा मिट्टी से बनी मूर्तियां, भित्ति-चित्र और बौध धर्म ग्रन्थों के एक बहुत बड़े संग्रह के कारण प्रसिद्ध है। यहां एक औषधालय, एक छोटा डाकखाना तथा एक हाई स्कूल भी है।

किब्बर गांव का गोम्पा भी दर्शनीय है। एक बहुत ही तंग घाटी में स्थित इस गांव की समुद्र तल से ऊंचाई लगभग १३६६५ फुट है, अतः यह दुनिया के सब से ऊंचे गांवों में से एक है। १९६१ की जनगणना के अनुसार इस गांव की जनसंख्या २६० थी। इस गांव में एक छोटा डाक-घर, एक मिडल स्कूल तथा एक औषधालय भी उपलब्ध है।

---

†अधिक जानकारी के लिए देखें, 'लाहुल के त्यौहार तथा मेले' बलराम; सोमसी, अक्तूबर 1976, पृष्ठ 29।

स्पिति नदी के बाईं ओर काजा से २४ किलोमीटर अनुप्रवाह (down-stream) की दूरी पर डंखार गांव स्थित है। आजादी से पहले अर्थात् 'नोनो' के शासन काल के समय यह गांव स्पिति घाटी की राजधानी हुआ करता था। इस गांव की समुद्र तल से ऊंचाई लगभग १२५७८ फुट (३८७० मीटर) है। इस स्थान पर स्पिति घाटी काफी खुली है। नदी के सतह से लगभग ६६० फुट की ऊंचाई के एक पहाड़ी टीले पर यह गांव बसा है और कुछ दूरी पर डंखार गांव का वह बदनाम किला है।

डंखार गांव का किला क्यों बदनाम हुआ ? कहते हैं कि स्पिति का शासक 'नोनो' इस किले को जेल के रूप में प्रयोग में लाता था। इस किले में एक ऐसा भी कमरा बना हुआ था जिस मे न तो खिड़कियां थीं और न ही दरवाज़े। केवल छत पर एक सूराख हुआ करता था जहां से कि कैदियों को नीचे छोड़ा जाता था और उन लोगों को खाना इत्यादि भी वहां से फैंका जाता था। उस अन्धेरी काल कोठरी में कुछ दिन रहने के बाद वे स्वयं ही घुट-घुट कर मर जाते थे।

डंखार गांव में भी एक सार्वजनिक स्वास्थ्य इकाई, एक प्राईमरी स्कूल तथा एक डाकखाना है। १९६१ की जन गणना के अनुसार इस गांव की जनसंख्या मात्र १६८ थी। इसके बावजूद यहां का मुख्य दर्शनीय स्थल तो गोम्पा ही है जिसमें लगभग एक सौ लामाएं अर्थात् गांव के कुल आबादी का ६० प्रतिशत लोग इस गोम्पे में रहते हैं। इसी से ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह गोम्पा वहां के मानदण्ड के अनुसार कितना बड़ा होगा तथा एक छोटे से गांव के समाज में इसका क्या स्थान होगा। इस गोम्पे में भोटी भाषा में लिखे धार्मिक ग्रन्थों का एक पुस्तकालय भी है।

स्पिति के लोग सदा से ही शान्ति प्रिय रहे हैं। हर काम परमात्मा को याद करते हुए करना उनके जीवन का एक अभिन्न अंग है। परन्तु इतिहास बताता है कि स्पिति के पड़ौसियों खास कर लद्दाख, कुल्लू, चम्बा और बुशैहर की रियास्तों ने इन लोगों को कभी भी चैन से रहने नहीं दिया। लड़ाकु प्रवृत्ति के न होने के कारण जब भी किसी ने स्पिति पर आक्रमण किया तो ये लोग अपना सब कुछ पीछे छोड़ कर जान बचाने के लिए पहाड़ों की ओर भाग जाते थे। किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचने के बाद एक ऐसी जगह पर घास-फूस इत्यादि इकट्ठा करके आग जलाते थे जहां से कि धुआँ दूर-दूर तक के लोगों को दिखाई दे सके ताकि उनको यह पता लग सके कि दुश्मन ने आक्रमण कर दिया है इस लिए जान बचा कर भाग निकलो। इन स्थानों को 'डंखार' कह कर पुकारा जाता था और अभी भी उसी नाम से पुकारा जाता है। शायद डंखार गांव का नाम इसी प्रकार से पड़ा होगा।

यहां यह बता देना उचित रहेगा कि हर गोम्पे में एक मुख्य लामा होता है जिसे 'खांपो' कहते हैं। खांपो के दो सहायक लामा भी होते हैं जिनमें से बड़े लामा को 'उज़त' तथा उससे छोटे लामा को 'ग्योपा' कहते हैं। ग्योपा का काम गोम्पे की सम्पत्ति की सुरक्षा तथा गोम्पे में रहने वाले आम लामाओं की आदतों इत्यादि पर कड़ी नजर रखना होता है। ये तीन लामाएं मिलकर गोम्पे का संचालन करते हैं। साधारणतया मुख्य लामा को गांव वाले ही चुनते हैं। यह देखा गया है कि हमेशा सबसे ज्यादा उपयुक्त लामा के चुने जाने के कारण चुनाव में मुकाबला बहुत कम होता है।

इसके विपरीत दूसरे और तीसरे दर्जे के लामाओं को मुख्य लामा ही मनोनीत करता है। इन तीनों लामाओं के कार्यकाल की कोई निश्चित अवधि नहीं है। जब तक गांव वाले चाहें तब तक वे इन पदों पर रह सकते हैं। इसके विपरीत ढंखार और ताबो गोम्पाओं में मुख्य लामा केवल तीन साल के लिए ही चुना जाता है। इस निश्चित अवधि के बाद साधारणतया दूसरे दर्जे के पद पर कार्य करने वाला लामा ही मुख्य लामा का कार्य भार सम्भाल लेता है।

स्पिति में हर समय हर घर के छत पर सफेद कपड़े के बने हुए झण्डे फड़फड़ाते नजर आते हैं जिन पर भोटी भाषा में 'ओम मने पदमा हुम्' इत्यादि लिखा रहता है। हर सुन्दर से दिखने वाले पत्थर पर भी यह मन्त्र लिख कर 'मने' पर चढ़ा दिया जाता है। 'मने' एक दिवार सा बना होता है जिसके ऊपर सैंकड़ों पत्थर रखे रहते हैं। कभी-कभी तो यह 'मने' रूपी दिवार सैंकड़ों फुट लम्बे होते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि इन 'ननेओं' के ऊपर 'ओम मने पदमा हुम्' इत्यादि मन्त्र लिखे पत्थर रखने से हर मनोकामनाएं पूरी हो जाती हैं। इसलिए स्पिति के लगभग हर गाँव के नजदीक 'मने' बना हुआ होता है। और हर राहगीर उस 'मने' पर एक पत्थर के टुकड़े को रखने के बाद एक दक्षिणावर्त्त (Clock-wise) चक्र लगाने के पश्चात् ही आगे चलना शुरु करता है।

गोम्पा हो या घर की चार दिवारें, अन्दर हो या बाहर, खेत हो या खलिहान सभी जगह 'ओम मने पदमा हुम्' मन्त्र ही व्यापक नज़र आता है। हर प्रौढ़ व्यक्ति भगवान् बुद्ध की तसवीर को अपने साथ लिए फिरता है। तसवीर को खराब होने से बचाने के लिए एक साधारण केमरे के आकार का एक डिब्बा बना कर उसमें रखते हैं और केमरे के समान ही कन्धे से लटका कर रखा जाता है। यह डिब्बा साधारणतया तांबे का बना हुआ होता है।

जहां तक आध्यात्मिक-कल्याण का प्रश्न है, प्रत्येक लामा अपने आप में एक पूर्ण संस्था है क्योंकि वह पूजा-पाठ अपने कमरे में अलग से करता रहता है।

स्पिति के गोम्पों के आय के दो मुख्य साधन हैं— (१) गोम्पे की अपनी जमीन तथा (२) निर्धारित गांव से मिलने वाला अनाज। हर गोम्पे के पास अपनी कुछ खेती करने योग्य जीमन होती है जहां से कि उसे कुछ आमदनी मिलती रहती है। यह जमीन सामान्यतया मुज़ारे ही जोतते हैं। प्रत्येक अपने अधिकार-क्षेत्र के अन्तंगत आने वाले गांवों से भी कुछ अनाज इकट्ठा कर लेते हैं जो कि एक गोम्पे द्वारा प्रदान की जाने वाली आध्यात्मिक सेवा के लिए एक अशदान माना जाता है।

इसके अतिरिक्त श्रद्धालु लोगों द्वारा दिया गया उपहार-स्वरूप सहयोग तथा योगदान भी गोम्पे की आय का एक साधन है। गोम्पे में रहने वाले लामाओं के नजदीकी रिश्तेदार भी उनके भरण-पोषण के लिए उत्तरदायी होते हैं। कभी-कभी कुछ लामा समय से पहले ही गोम्पे को छोड़ कर जाना चाहते हैं। इन हालात में उन्हें गोम्पे में कुछ क्षति पूरक धन जमा करना होता है। इसी प्रकार से अगर कोई लामा अपने निश्चित कर्तव्य के पालन करने में असफल हो जाता है या उस कार्य को करना नहीं चाहता, तब भी वह क्षति-पूरक धन जमा करके उससे छूट ले सकता है। ये धन भी सामूहिक आय का एक साधन होता है।

कभी-कभी कुछ लामाओं को लोग अपने घरों में बौद्ध धर्म ग्रन्थों का पाठ करने के लिए बुला भेजते हैं, जिसे 'कुरिम्' कहा जाता है। इस 'कुरिम्' में भाग लेने वाले लामाओं को लोग पैसा और अनाज इत्यादि देते हैं जिसे वे गोम्पे के आय में न डाल कर अपने व्यक्तिगत खर्च के लिए रख देते हैं।

लामा बनने के लिए कुछ निर्धारित नियमों का पालन करना होता है। सामान्यता जमीनदारों के छोटे लड़के ही लामा बनते हैं, क्योंकि बड़े लड़कों की शादी हो जाती है और इस तरह से वे गृहस्थ के कार्य-भार को सम्भालते हैं। जब लड़के स्कूल जाने के योग्य हो जाते हैं अर्थात जब लड़कों की आयु पांच-छः साल की हो जाती है तब उनके अविभावक (Guardian) उनको नज़दीक के किसी गोम्पे में ले जाते हैं। गोम्पे के मुख्य लामा की उपस्थिति में एक छोटा सा समारोह आयोजित किया जाता है जिस समय उन बच्चों को कुछ शपथ दिलाई जाती है (चाहे उस उमर में उन्हें इस बात के महत्व का ही ज्ञान न हो, यह दूसरी बात है) जिनमें से कुछ ये हैं; पाप नहीं करना, झूठ नहीं बोलना, शराब नहीं पीना, औरतों के संग नहीं रहना और अहिंसा इत्यादि। इस धर्मानुष्ठान के बाद उनको 'ग्याछ ुल' कह कर पुकारा जाता है, जिस का मतलब होता है, 'धार्मिक पुरुष'। अगर कोई 'ग्याछ ुल' अपने शपथ को तोड़ता है तो उसे इस दुर्व्यवहार के लिए सदा के लिए गोम्पे से बाहर निकाल दिया जाता है। परन्तु इस नियम को अब शायद सख्ती से लागू नहीं किया जाता है क्योंकि यह देखने में आता है कि हर लामा हो या ग्याछ ुल 'छङ' (जौ या चावल से तैयार किया गया एक मादक पेय) पीता है। अगर कोई अन्तर है तो वह है केवल उपभोग की मात्रा में। शायद छङ' शराब की श्रेणी में नहीं आती है।

'ग्याछ ुल' आम तौर पर गोम्पे में ही रहता है। वह अपने मां-बाप और भाई-बहिनों से मिलने भी जा सकता है, और कुछ समय के लिए उनके पास रह भी सकता है। इसलिए यह भी देखने में आता है कि वे सर्दियों में गोम्पे में ही रहते हैं और वहां रह कर शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करते रहते हैं। इसके विपरीत गर्मियों में क्योंकि घर में खेती-बाड़ी से सम्बन्धित कई प्रकार के काम होते हैं, इसलिए गर्मियों में घर आ जाते हैं ताकि घर वालों का काम में हाथ बंटा सकें। इसके लिए एक अविभावक के लिए यह जरूरी होता है कि वह एक-दो साल के उपरान्त गोम्पे में पुष्टि कर दे कि उसके आश्रित (Ward) ने 'ग्याछ ुल' बनते समय ली गई शपथ को नहीं तोड़ा है।

दस-बारह साल गोम्पे में 'ग्याछुल' के रूप में रहने के बाद वे 'गेलोङ' बनते हैं जिसका मतलब होता है 'धर्म पर चलने वाला'। 'गेलोङ' बनते समय भी कुछ और शपथ ग्रहण करने होते हैं जिनकी गिनती सैंकड़ों तक होती है। और इसी तरह एक गेलोङ को पूर्ण लामा बनने के लिए काफी समय लग जाता है।

यहां पर गोम्पे से सम्बन्धित एक लोकप्रिय प्रथा, 'बुजहेन्' के बारे में उल्लेख करना उचित रहेगा। हर मठवासी, या लामा के सभी लड़के भिक्षु बन जाते हैं, जिसे स्थानीय भाषा में 'बुज़हेन्' कहते हैं। इसके अतिरिक्त कभी-कभी किसानों के छोटे लड़के भी 'बुजहेन्' बन जाते हैं। इस सम्बन्ध में एक कहानी सुनने को मिलती है।

कहते हैं कि किसी जमाने में तिब्बत में एक निर्दयी राजा राज किया करते थे। उसने अपनी प्रजा की धार्मिक स्वतन्त्रता को खत्म कर दिया था। यही नहीं बल्कि उसने लोगों को बुद्ध धर्म

को त्याग देने के लिए भी मजबूर करना शुरू कर दिया था। ऐसी स्थिति में एक देवता ने उसी राजा के घर जन्म लिया। राजा इस बात से अनभिज्ञ था। बच्चे का नाम 'ग्यालपो' रखा गया। ग्यालपो बचपन से ही सहनशील और धार्मिक प्रवृति का था। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया त्यों-त्यों उसके इन गुणों में और भी निखार आता गया। बड़े होने के बाद ग्यालपो ने अनुभव किया कि निर्दयी राजा के कारण बहुत से लोग पहले ही बुद्ध धर्म को छोड़ चुके हैं इस लिए धर्म-ग्रन्थों के वितरण से दोबारा उनका धर्म परिवर्तन करना आसान काम नहीं है। बहुत सोच विचार करने के बाद उसने आज के 'बुज़हेन्' का सा पहनावा धारण करके घर से निकल पड़ा। वह जहां जहां भी गया लोगों को 'ओम मने पदमा हुम्' का मन्त्र भी सिखाता गया और बौध धर्म की श्रेष्ठता के बारे में भी लोगों को समझाता गया। उसे यह भली भान्ति मालूम था कि अगर वह सीधा ही उपदेश देना शुरू कर दे तो कोई भी उसके पास नहीं आ फटकेगा। इसलिए वह उपदेश के साथ-साथ जादुई करिश्मे दिखा कर लोगों का मनोरंजन भी करने लगा। इस तरह से वह फिर से लोगों को बौध-धर्म में परिवर्तन करने में सफल हो गया।

इस लिए ग्यालपी 'बुजहेन्' प्रथा के संस्थापक माने जाते हैं। आज के 'बुजहेन्' भी लोगों को ऐन्द्रजालिक करतब दिखाते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान घूमते फिरते हैं। लोहे के छड़ के एक किनारे को एक आंख के ऊपर टिका कर उसे मोड़ देना और छाती पर एक बड़े पत्थर को रखकर उसे किसी दूसरे व्यक्ति से मारतौल के द्वारा तुड़वाना आदि इस प्रकार के करतबों के कुछ उदाहरण हैं 'बुज़हेन्' और दूसरे लामाओं के पहरावे में केवल इतना अन्तर है कि लामा लोग सिर पर बाल नहीं रखते जबकि बुज़हेन् औरतों की तरह लम्बे-लम्बे बाल रखते हैं।

गोम्पे के अतिरिक्त कहीं-कहीं ऐसे मन्दिर भी होते हैं जहां पर 'ल्हा' अर्थात् असुरों की पूजा होती है। इस लिए इन मन्दिरों को 'ल्हा-खङ' कहा जाता है।

संक्षिप्त में इतना ही कह देना उचित होगा कि स्पिति में हर प्रौढ़ व्यक्ति एक हाथ में माला, दूसरे में 'दुङग्युर (prayer-wheel), कन्धे से लटकती भगवान बुद्ध की तसवीर तथा मुंह से 'ओम मने पदमा हुम्' मन्त्र का जाप करता नजर आता है।

उप-निदेशक,
श्रम ब्यूरो,
शिमला–१७१००४

कांगड़ी लोक-गीतों में श्री कृष्ण का स्थान

—सुदर्शन डोगरा

गीत मानव मन की सूक्ष्म अनुभूतियों को व्यक्त करने का एक अति सुन्दर साधन होते हैं। मानव अपने मन के भावों को गा कर गीतों द्वारा व्यक्त करता है। कई बार मन बोझिल होने पर थोड़ा रो लेने से भी मन का भार हल्का हो जाता है पर गा कर जिस आनन्द की अनुभूति होती है वह आनन्द अलौकिक होता है। इन गीतों की भी एक परम्परा आदि काल से चली आ रही है जो अभी भी लोक वाणी द्वारा प्रस्फुटित होती रहती हैं। इन लोक-गीतों में भिन्न-भिन्न कालों की संस्कृति छिपी है जिस का अवलोकन इनके माध्यम से हो जाता है। महापुरुषों, ऋषियों, देवताओं व अवतार माने जाने वाले व्यक्तियों के चरित्रों का यशोगान इन गीतों में स्थान-स्थान पर मिलता है। श्री कृष्ण जी को सर्व प्रथम परब्रह्म का अवतार श्रीमद्भागवत में माना गया है। उसी का आधार लेकर भक्त कवि सूरदास जी ने श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं का साकार चित्रण अपने गीतों में किया है। वह गीत इतने मधुर व मर्मस्पर्शी सिद्ध हुए कि विदेशों में भी आज श्री कृष्ण लीला का गान व मंचन होने लगा है।

हिमाचल प्रदेश तो भला उत्तरी भारत का मुकुट है भला यहां पर जन्मे श्री कृष्ण का गान यहां क्यों नहीं होगा। हिमाचल की संस्कृति वैदिक संस्कृति से प्रभावित है और धर्म परायण लोग हैं। अवतारवाद की महिमा तथा कर्मकाण्ड पर विश्वास रखने वाले लोग भला श्रीकृष्ण की महिमा को कैसे भूल सकते हैं। मण्डी, कुल्लू, चम्बा, सिरमौर, बिलासपुर तथा सोलन आदि जिलों में गाए जाने वाले गीतों में श्रीकृष्ण की लीलाओं की झलक यत्र-तत्र मिलती है। जिला कांगड़ा में तो प्रत्येक घर में श्रीकृष्ण की पूजा होती है और जन्म से लेकर विवाह तक के गीतों में श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन मिलता है।

इस जन-पद में फैली संस्कृति में उनका आराध्य देव धीर, वीर और आकर्षक है इसी लिए वह उनके जीवन के प्रत्येक पक्ष में उनके साथ है। जब बच्चे का जन्म होता है तब जो बधाई गीत गाया जाता है वह भी श्रीकृष्ण से सम्बन्धित है। श्रीकृष्ण के जन्म पर गोपियां यशोदा को बधाई देने आती हैं और गाती हैं :—

घर तेरें असां आईयां, बधाइयां बीबी लैंह तू बधाइयां।
कालें म्हीने न्हेरियां रातीं, जन्मीयां कृसन मरारी,
बधाइयां बीबी लैंह तू बधाइयां............
जां जम्मियां तां दीपक बलिया, चारें चक्कें होईयां लोईं,
बधाइयां बीबी लैंह तू बधाइयां............

घोल पतासा में गुल सट बीदी, सूनें दी है कटोरी,
बधाइयां बीबी लैह तू बधाइयां............
चनण कटी पलंघूड़ा घडां दी, रेसमी लांदी मैं डोरां,
बधाइयां बीबी लैह तू बधाइयां............

एक सखी श्रीकृष्ण की माता यशोदा को कहती है,—"काले महीने अर्थात् भादों मास की अन्धेरी रात्रि में श्रीकृष्ण का जन्म हो गया है बहन तुझे वधाई हो। जब श्रीकृष्ण पैदा हुए तो आचानक ही प्रकाश हो गया था, तुझे वधाई हो। सोने की कटोरी में पताशा घोल कर बालक को घुट्टी पिलाती हूं और चंदन का पेड़ कटवा कर पालना बनवानी हूं उसमें रेशम की डोरी लगाऊंगी बहन तुझे बधाई हो।" इस प्रकार अपने मन की प्रसन्नता को सखी के मुख द्वारा इस गीत के माध्यम से व्यक्त किया गया है जो प्रत्येक बालक के जन्म पर गाया जाता है।

इसी प्रकार का वात्सलय रस से परिपूर्ण एक गीत बालक के जन्म दिन पर गाया जाता है, जिसका क्रम ऊपर के गीत के अनुसार कितना सार्थिक है। अब नवजात कृष्ण कुछ बड़ा हो गया है। मां उसे गोदी में लेकर चरखा कातने बैठ जाती है तो कृष्ण रोने लगता है कि मुझे पालने में ही झूला झुलाते रहो। इस गीत में बाल मनोविज्ञान की सजीव अभिव्यक्ति है :—

भलिया स्यामा कतण सानूं नहीं वे दिंदा।
जां मैं कतण बैहदी, रोए कन्हैया,
झूटियां देह मेरी मैया,
कतण सानूं नहीं वे दिंदा।

इसी प्रकार श्रीकृष्ण कुछ बड़ा हो जाता है तो कुछ शरारतों में भी बढ़ौतरी होने लगती है। एक दिन श्रीकृष्ण ने ग्वालों के साथ मिलकर माखन चूरा लिया। जल्दवाजी में छिक्का गिरकर टूट गया और कृष्ण रंगे हाथों पकड़ा गया। अब श्रीकृष्ण को पकड़ कर माता यशोदा के पास सखियां लाकर खड़ा कर देती हैं तब वे कहती हैं :—

स्यामां असां जरमटड़े खेलणा जाणा, असां जरमटड़े ....
खेलण जाइये राम धियाइये, तीर्थ न्होइये गया करी,
तरवेणीयां जाइये, बीन बजाइये, स्याम खेले जरमटड़ा जी।
स्यामां दोहयो गुजरियां देहन उलाहमें,
मेरा माखनड़ा खाधा तेरे स्यामें, मेरा माखनड़ा.........
माखण खाधा, दहीं भी डोलिया नित उठी भांडियां भन्ने।
जे कहीये तां रोई डरांदा, दोस बरालियां देइये।

श्याम घर से तो अच्छी-अच्छी खेलें खेलने के लिए निकलता है कि हम राम का भजन कर, तीर्थ के स्नान का और त्रिवेणी में जाकर वीणा वादन का खेल करेंगे और जाकर हमारे छिक्कों से माखन चुराता है। यदि इसे डांटा जाए तो रो-रो कर हमें डराता है। हम तो आज तक बिल्ली को ही दोष देती रहीं।

इस प्रकार के उलाहनों से तंग आकर माता यशोदा ने एक दिन मरुए के पेड़ के नीचे श्रीकृष्ण को रस्सी से बांध दिया और पतली छड़ी से उसकी पिटाई की। इस पर श्रीकृष्ण ने अपनी सफाई किस प्रकार दी वह इस गीत में दर्शनीय है :—

अंगणें मेरे मरुए दा बूटा, अंगण लीया है छाई ए।
माता जसोदा दो बेटड़े जाए, माखण खाधा चराई ए।
हथड़ू भी बन्हे माइयें पलड़ू भी बन्हें,
छुमकियां छमकाया ए।
मैं नहीं खाधा मेरीये माए खाइ गिया बड्डा भाई ए।
हथड़ू भी खोले माइयें पलड़ू भी खोले, भीड़ी झम्बी गल् लाया ए।

जब फिर माखन की चोरी का पता चला तो इस बार यशोदा ने श्रीकृष्ण के रस्सी से हाथ पांव बांध दिए और उसकी पतली छड़ी से पिटाई की तब श्रीकृष्ण कहने लगे मेरी माता, मैंने माखन नहीं खाया है, माखन को बड़ा भैया बलराम खा गया है। तुम तो मुझे व्यर्थ ही मारती हो। मां ने हाथ पांव के बन्धन खोल कर श्रीकृष्ण को गले से लगा लिया।

इसी बीच में कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिए पूतना आदि को भेजना प्रारम्भ कर दिया था। जब श्रीकृष्ण पूतना से भी बच निकले तब मां ने उन्हें हौए का डर दिखाया कि बाहर खेलने मत जाया करो। बाहर हौए होते हैं। वे तुम्हें पकड़ कर ले जाएंगे।

बाहर खेलण मत जांदे, बेटा जी बाहर हौए होते हैं।
मैं तां कदी भी नी देखे हौए, माता जी हौए कैसे होते हैं?
बणे विच जाई ध्रुव भगत मैं तारिया,
नरसिंघ रूप धरी हरणागस मारिया
तां भी नी देखे हौए माता जी हौए कैसे होते हैं?
बाहीं खलारी माए ताड़का जे आई,
इक्की बाणें ने सुरग पजाई
तां भी नी देखे हौए माता जी हौए कैसे होते हैं?

माता के द्वारा बाहर जाने से रोकने पर श्री कृष्ण मां से पूछते हैं, "मां हौए कैसे होते हैं? मैंने तो उन्हें कभी भी नहीं देखा। जंगल में जाकर ध्रुव भक्त का मैंने उद्धार किया, नरसिंह रूप धारण करके हरिण्यकशिपु को मारा। मैंने तब भी हौआ नहीं देखा। जंगल में बाहें फैला कर दौड़ती हुई ताड़का आई थी मैंने उसे भी एक ही बाण से मार डाला था। पर मैंने कभी भी हौए को नहीं देखा। सच्च बताओ हौए कैसे होते हैं।" इस गीत में बाल सुलभ जिज्ञासा का चित्रण है।

कृष्ण कुछ बड़े हो गए हैं अब उनका परिचय राधा के साथ हो गया। बचपन का प्रेम धीरे-धीरे प्रणय भावना में बदल गया है। दोनों एक दूसरे के प्रेम में एक हो कर रह गए हैं। एक दिन कृष्ण और राधा में नोंक-झोंक हो गई। कृष्ण रूठ गया। न तो स्वाभिमानिनी राधा ही मनाने में पहल करना चाहती है और न ही कृष्ण। परन्तु दोनों के हृदय में विछोह की पीड़ा प्रबल रूप

धारण कर चुकी है अंत में श्री कृष्ण बांसुरी बजाते हुए राधा के घर की ओर बढ़ते हैं तो उसकी प्रतिक्रिया इस गीत में देखिए :—

संझलीया बेला क्रसनें बंसी बजाई, जी बंसी बजाई
राधा दें मंदरें सणाई ए।
बंसरी सुणी राधा छम जम रोई, जी छम छम रोई
नैणा भरी भरी रोई ए।
किसिये दी भिज्जी यह नरमे दी चोली, जी नरमे दी चोली
किसिये दा भिज्जिया रमाल ए।
राधा दी भिज्जी यह नरमे दी चोली, जी नरमे दी चोली
क्रसणे दा भिज्जिया रमाल ए।

संध्या होते ही श्रीकृष्ण ने बांसुरी बजाई। बांसुरी की मधुर तान राधा को घर में सुनाई दी। सुनते ही राधा की आंखों ने आंसुओं की झड़ी लगा दी। और रोते-रोते उसकी रेशमी चोली भीग गई। उधर कृष्ण के नेत्रों से अश्रु बरसने लगे जिन्होंने उनके रुमाल को भिगो डाला। जिस प्रकार राधा और कृष्ण का मन एक साथ दुःखी था उसी प्रकार चोली और रुमाल भी एक साथ भीग रहे थे। इस गीत में आन्तरिक प्रेम और संयित श्रृंगार की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

श्रीकृष्ण की लीला के इन गीतों में जहां श्रृंगार रस व वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति हुई है वहां वीर रस भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। श्रीकृष्ण को मारने के लिए राजा कंस एक षड्यन्त्र रचता है। वह श्रीकृष्ण को मल्ल-युद्ध के लिए बुलाता है तब माता यशोदा कृष्ण को वहां जाने से रोकती है परन्तु कृष्ण नहीं मानते हैं :—

गोयल् माए छीझां पइयां, मैं भी छिझां जो जाणा।
छिझां बेटा नी वो जाणा, तित तेरे दुसमण वैरी।
छिझां माए मैं वो जाणा, तित मेरे मामे ने ओणा।
दुध दियां म्हैसड़िये कृष्णें जो खीर खुआणी।
अग्गें दिंदी इक मण वो अब किहियां दो मण दीता।
मरी जायां म्हैसड़ीये क्रसने दा रिजक घटाया।
म्हैसा जो गाल् न दियां वो माए इन्नें मेरा रिजक बधाया।
पहली चोट पई टमकें धरत कंबी लोक डर दे।
दूजी चोट पई टमकें महलां दे कुंनारे टराए।
त्रीजी चोट पई टमकें गभणी दे गर्भ गुआए।
चौथी चोट पई टमकें, जूध लगा दूंह जणियां।
जुध लग्गा दूंह जणियां, सक्के मामे सक्के भाणजे।
कंस मारी भूंइयां सट्टिया पृथिया दा भार मकाया।
उठ माए बांड गुड़ स्याम जित्ती घरें आया।

इस गीत में श्रीकृष्ण जी अपनी मां यशोदा से कहते हैं,—'माता गोकुल में छिंज (मेले) हो रहे हैं और मैंने भी मेले में जाना है। माता वहां जाने के लिए मना करती है कि वहां हमारे शत्रु भी हो सकते हैं। भैंस के दूध की खीर खिलाने का लालच भी देती है पर कृष्ण नहीं मानते। जब वहां पहुंचते हैं तब क्या देखते हैं कि कंस ने मल्ल युद्ध का आयोजन कर रखा है। श्रीकृष्ण द्वारा नगाड़े पर पहली चोट पड़ते ही पृथ्वी थर-थर कांपने लगती है, लोग डर जाते हैं, दूसरी चोट के धमाके से कंस के महलों की बुर्जियां गिर जाती हैं, तीसरी चोट को सुन कर गर्भवती स्त्रियों का गर्भपात हो जाता है और जब चौथी चोट नगाड़े पर पड़ती है तब कृष्ण और कंस में युद्ध छिड़ जाता है। दोनों सगे मामा-भानजा हैं। श्रीकृष्ण कंस को मार कर वापिस आ जाते हैं और मां को कहते हैं कि मां अब शक्कर बांटो तुम्हारे बेटा जीत कर घर आया है। इस गीत में वीर रस का पुष्टि उदाहरण मिलता है।

श्रीकृष्ण से सम्बन्धित गीतों में मानव के विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति हुई है। राधा और गोपियों को छोड़कर श्रीकृष्ण अब मथुरा में रहने लग गए हैं। मां का दिल श्रीकृष्ण से मिलने को तड़फता है तो वह आने-जाने वाले लोगों के पास श्रीकृष्ण को संदेश भेज कर बुलाती है:—

ओ मेरे भोलॅ स्यामां जल्दी घरां जो ओयां,
तेरी माता जसोदा कुछ कैंहदी है। तेरी माता ....
ओ मेरी भोली माता मैं किहियां घरैं ओआं
अग्गैं जमना सैह लैंहरियां लैंदी है। अग्गैं जमना ....
ओ मेरे भोलॅ स्यामा जमना ने क्या कहणां,
मैं वारी जां।
जमना नें क्या कहणा चरना छूंहदियां जमना ने हट जाणा
चरना छूंहदियां जमना ने.........
ओ मेरी भोली माता मैं किहियां घरैं ओंआं,
अग्गैं सखियां दी टोली बैंहदी है।
ओ मेरे भोलॅ स्यामा सखियां ने क्या कहणा,
मैं वारी जां सखियां ने ....
बंसरी बजदियां सखियां ने नच्ची पौणा।

माता यशोदा का संदेश सुन कर श्रीकृष्ण भांति-भांति के बहाने बनाते हैं कि मां तुम्हीं सोचो रास्ते में इतनी बड़ी नदी यमुना पड़ती है, मैं भला कैसे आ सकता हूं। मां कहलवा भेजती है कि यमुना तुम्हें क्या रोकेगी वह तो तुम्हारे चरणों का स्पर्श करके तुम्हें रास्ता दे देगी। फिर वे सखियों का बहाना बनाते हैं कि वे मुझे रास्ते में ही रोक लेंगी मैं तुम तक पहुंच भी न पाऊंगा। इस पर यशोदा कहलवा भेजती है कि तुम्हारी बांसुरी की तान को सुनते ही विमुग्ध गोपियां नाचना आरम्भ कर देंगी तब तुम भाग कर आ जाना। इस गीत में मां का वात्सल्य बेटे को मिलने के लिए व्यग्र दर्शाया गया है।

वात्सल्य रस के साथ-साथ शृंगार रस के वियोग पक्ष को भी इन गीतों में विशेष रूप से उभारा गया है। इस प्रकार के भावों को व्यक्त करने वाला निम्न गीत देखिये:—

संझा भी होइयाँ संझेरां भी होइयाँ, गोविन्द नजरी नी आया ससु जी,
गोविन्द नजरी नी आया है।
गाईं भी आईयाँ जी म्हैसाँ भी आईयाँ,
चारने वाला नी आया ससु जी चारने वाला नी आया है।
गाईं भी दूहतियाँ जी म्हैसाँ भी दूहतियाँ,
पीमणें वाला नी आया ससु जी, पीमणे वाला नी आया है।
हत्थें लैन्दी गडुआ, गोदा पाँदी झलियाँ,
गोविन्दे तोपणा जाणा ससु जी, गोविन्दे तोपणा जाणा है।
जमना कनारे जी कुब्जा दा डेरा ओहथ रैहंदा स्याम मेरा,
ससु जी, ओहथू रैहंदा स्याम मेरा ए।
कुबजाँ कुबड़ी जी दिखणें जो काली स्यामें जो जादू करां दी,
ससु जी स्यामें जो जादू करां दी है।
सदाँ मैं चेला पुआँदी मैं खेला स्यामें दा
जादू कढ़ाणा ससु जी, स्यामें दा जादू कढ़ाणा ए ....
सदाँ मैं चेला पुआसाँ मैं खेला कुब्जाँ जो जादू कराणा ए।
कुब्जाँ जो जादू कराणा ससु जी, कुब्जाँ जो जादु कराणा ए।

इस गीत में सच्चे प्रेम की अभिव्यक्ति के साथ-साथ हृदय में प्रणय पीड़ा और सौत डाह की भावना का उद्‌घाटित किया गया है। सांझ हो गई है। श्रीकृष्ण गौओं को चराने गए हैं। राधा उनकी प्रतीक्षा कर रही है। परन्तु होता क्या है, कि सभी गौएं और भैंसे तो अन्य ग्वालों के पशुओं के साथ लौट आती हैं पर उन्हें चराने के लिए गया हुआ कृष्ण नहीं लौटता है। राधा चिन्तित मन से काम में लग जाती है। दूध दूह कर उबाल भी लेती है परन्तु पीने वाला कृष्ण नहीं पहुंचता। राधा की छटपटाहट और बढ़ जाती है। वह सहमी सी हाथ में दूध का लोटा और मक्की के भुने हुए दाने आंचल में छुपा कर कृष्ण को ढूंढ़ने निकल पड़ती है। रास्ते में कोई उसे बता देता है कि दूर यमुना के किनारे पर कुब्जां के घर में तुम्हारा कृष्ण आज रात्रि को ठहरेगा। यह सुनकर राधा का तन-मन क्रोध से कांप उठता है। वह लौटकर अपनी सास को कहती है कि—"मेरी समझ में नहीं आता कि उस कूबड़ी और काली-कलूटी कुब्जा के पास कृष्ण के लिए क्या रखा है ?" उसने अवश्य ही मेरे कृष्ण पर जादू कर रखा है। मैं भी चेलों (जादू निकालने वाले ओझों) को बुलाऊंगी। कृष्ण का जादू निकलवा कर, कुब्जा को ऐसा जादू करवाऊंगी कि वह भी याद रखेगी।

इस गीत में राधा की आस्था कृष्ण पर अटूट है पर कुब्जा से ईर्ष्या वश उसे क्रोध आ जाता है जो ऐसी स्थिति में प्रत्येक नारी के लिए स्वाभाविक ही है। अत: इस प्रकार के विभिन्न गीतों में नारी मन की सूक्ष्म अनुभूतियों को बड़ी सहजता से चित्रित किया गया है।

श्रीकृष्ण के जीवन के विभिन्न पहलुओं को इन गीतों का विषय बनाया गया है। श्रीकृष्ण मथुरा से द्वारिका पुरी को चले जाते हैं। वहां पर उनका विवाह रुकमणी से हो जाता है। परन्तु वे चुपके से सत्यभामा के साथ भी विवाह कर लेते हैं। जिसका रस्योद्‌घाटन इस प्रकार होता है :—

हस्सी-हस्सी पुच्छे राणी रुकमणी बात,
भजो गोविन्द राधे श्री जगरनाथ भजो गोविन्द ।
हस्सी-हस्सी पुच्छे राणी रुकमणी बात,
कंगणाँ काहाँ वो भनाया श्रो महाराज भजो गोविन्द
भाद्रों म्हीने गौरिये पुन्नी रखड़ूनी,
कंगणाँ बाहाँ भनाया श्रो महाराज भजो गोविन्द,
भजो गोविन्द राधे श्री जगरनाथ भजा गोविन्द ।
हस्सी-हस्सी पुच्छे राणी रुकमणी बात,
हथड़ू कहाँ रंगाए श्रो महाराज भजो गोविन्द,
जमना कनारे गौरिये मैंहदी दे बूटे, जमना .....
मैंहदी बाहाँ रचाई श्रो महाराज भजो गोविन्द ।
हस्सी-हस्सी पुच्छे राणी रुकमणी बात,
कपड़े काहाँ रंगाए श्रो महाराज,
भजो गोविन्द राधे श्री जगरनाथ भजो गोविन्द ।
फगण म्हीने गौरिये होली जे खेली,
कपड़े बाहाँ रंगाए श्रो महाराज भजो गोविन्द ।
हस्सी-हस्सी पुच्छे राणी रुकमणी बात,
डोला कुसदा श्राया श्रो महाराज, भजो गोविन्द,
भजो गोविन्द राधे श्री जगरनाथ भजो गोविन्द ।
खरी मन गौरिये तू बुरी मन गौरिये,
तेरी सौकण श्राई श्रो महाराज,
भजो गोविन्द राधे श्री जगरनाथ भजो गोविन्द ।

कई दिनों बाद श्रीकृष्ण लौटते हैं । रुक्मणी को उनमें कुछ परिवर्तन दिखाई देता है । वह उनसे हंस कर पूछती है कि, "यह कांगना कहां पर बंधवा आए हो ?" इसका उत्तर श्रीकृष्ण देते हैं कि "भादों मास में रक्षा बन्धन के दिन राखी जो बंधवाई थी वही तो है यह ।" फिर भी रुक्मणी को विश्वास नहीं होता वह पूछती है, "भला यह तो बताओ कि हाथों में मेंहदी क्यों रचाई है जी ?" श्रीकृष्ण कहते हैं कि "यमुना के किनारे मेंहदी के पेड़ देख कर बस यूँ ही मेंहदी लगा ली ।" फिर भी रुक्मणी पड़ताल करने से नहीं चूकती । कहती है, "अच्छा यह तो बताओ कि यह रंगीन वस्त्र क्यों पहन रखे हैं ?" इस पर वे बहाना बनाते हैं कि "फागुन मास में होली खेलते-खेलते वस्त्रों पर रंग गिर गया और मैंने रंगवा डाले ।" अभी पूछताछ चल ही रही थी कि सामने से सजी-संवारी डोली आती दिखाई दे गई । रुक्मणी ने पूछा, "अब यह तो बताएं कि इस डोली में कौन आ रही है ?" तब कृष्ण कहने लगे कि "गौरी चाहे तुम अच्छा मानो या बुरा । तुम्हारी सौत की डोली आ रही है अर्थात् मैंने सत्यभामा से विवाह कर लिया है ।"

इस गीत को अब भी लड़के के विवाह में वहु और बेटे को स्नान करवाते समय गाया जाता है । सम्भवतः बहुविवाह प्रथा काल में इसका प्रचलन आवश्यकतानुसार समझ कर हुआ होगा ।

इसी गीत के साथ उसी समय एक अन्य गीत भी गाया जाता है। जिसके बोल हैं :—

राती दे हंडणें तूं छोड़ी दे स्यामा, हूण होया घर वारी स्याम।
राती दे हंडणें तें क्या फल पाया,
देहिया दा नूर गुआया। स्याम।
सड़कां दे हंडणें तू छोड़ी दे स्यामा
हूण होया घर वारी। स्याम।
सड़कां दे हंडणें तें क्या फल पाया
जंघां दा जोर घटाया। स्याम।

इस गीत के द्वारा दूल्हे को शिक्षा दी जाती है कि तुम रात को घूमना छोड़ दो। रात को घूम-घूम कर तुमने अपने शरीर की कान्ति को गवा लिया है अब तुम्हारी भी घर-गृहस्थी हो गई है अतः अब अपनी जिम्मेवारी को समझा करो। शिक्षा दूल्हे को दी जाती है नाम कृष्ण का लिया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कांगड़ी गीतों में कृष्ण जन्म से लेकर विवाह तक के समस्त संस्कारों में समाया है। प्रत्येक संस्कार गीत कृष्ण के नाम से सम्बद्ध है। इन गीतों में वात्सल्य रस, वीर रस, शृंगार रस तथा उसके संयोग और वियोग पक्ष की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं, कन्दुक क्रीड़ाओं, रास लीलाओं और राधा कृष्ण के मिलन तथा विरह के प्रसंगों की अभिव्यक्ति करने वाले एक नहीं अनेकों गीत कांगड़ा लोक गीतों की आमूल्य सम्पदा है। जन्म से विवाह तक के संस्कारों में शंकर तथा श्रीराम से सम्बद्ध गीत भी गाए जाते हैं परन्तु कुल मिला कर तीन चौथाई गीत श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित ही गाए जाते हैं। इन गीतों से पता चलता है कि इस जनपद के लोगों की कृष्ण के प्रति कितनी श्रद्धा है।

सैट नं० ३, बुशैहर हाऊस,
राम बाजार, शिमला–१.

—०:०—

पर्वतीय राज्यों में सत्याग्रह का स्वरूप तथा इतिहास

—रूप कुमार शर्मा

शान्ति और अहिंसा सदा ही भारतीयों के उच्च आदर्श रहे हैं परन्तु एक ऐसा समय भी आया जब कि विदेशी आक्रमण और अत्याचारों से त्रस्त भारतीयों को इन आदर्शों का पुन: निरीक्षण करना पड़ा। अधिकार प्राप्त करने और अत्याचारों का सामना करने के लिए कई लोगों ने आतंकवाद तथा उग्रवाद का सहारा लिया और ऐसा लगने लगा कि भारतीयों का विश्वास अब शान्तिपूर्ण ढंगों में डगमगाने लगा है। ऐसी नाजुक स्थिति में महात्मा गान्धी ने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया जिन का सत्याग्रह में अटल विश्वास था उनके चमत्कारिक व्यक्तित्व ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के साधनों में शान्तिपूर्ण उपायों का परिवेश करवाया। गान्धी जी के लक्ष्य पूर्ति के शान्तिपूर्ण ढंगों और शिमला पर्वतीय राज्यों में होने वाले अहिंसात्मक आन्दोलन के साधनों में आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है।

इन सत्याग्रहों की पृष्ठभूमि की तरफ अगर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि लोगों ने जो समय-समय पर अपने अधिकारों को मांगने या अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए इन साधनों का प्रयोग समयानुकूल और समुचित किया है। शिमला पर्वतीय रियासतों के अन्तर्गत २७ रियास्तें आती थीं। इन रियासतों के शासक निरंकुश और दैवी अधिकारों पर विश्वास करने वाले थे। लोग आर्थिक रूप से निर्धन और सामाजिक रूप से पिछड़े हुए अत: वे ऐसा संघर्ष करने का सामर्थ्य नहीं रखते थे जिस में हथियारों का प्रयोग हो। अंग्रेजों की मित्रता और संरक्षण ने राजाओं को और भी अकर्मक बना दिया। फलस्वरूप कई बार लोगों को अहिंसात्मक आन्दोलनों का सहारा लेना पड़ा। इन आन्दोलनों में से कुछ इस प्रकार हैं :—

डूम (सामूहिक सत्याग्रह आन्दोलन) :

डूम एक सर्व प्रिय सामूहिक सत्याग्रह को कहते हैं जो किसी विशेष शिकायत की सुनवाई के लिए या अधिकारों की मांग मनवाने के लिए किया जाता है। यह शासक के विरुद्ध असन्तोष से उत्पन्न लोक प्रदर्शन है। बुशैहर रियासत और अन्य रियासतों में इस प्रकार के प्रदर्शन हुए हैं। यह आन्दोलन अहिंसात्मक होता था और शासक की ओर से असन्तोष दूर करने या मांगों को मानने का अश्वासन मिलने पर इस आन्दोलन को समाप्त कर दिया जाता था। इस आन्दोलन के अनुसार संतप्त व्यक्ति अपने घरों को छोड़ कर दूरस्थ पर्वत पर जाकर वहां अपना अस्थायी निवास बनाते थे और तब तक घर नहीं लौटते थे जब तक कि उन्हें उचित न्याय न मिल जाए। इस प्रकार का आन्दोलन १८५६ में भूमि-कर को उपज से नकदी में वसूल करने के

आदेश को लेकर हुआ था क्योंकि रियासत में नकदी की भारी कमी थी। लोगों को शिकायत थी कि मुन्शी श्यामलाल की भूमि-कर लगाने तथा भूमि पैमाइश लोक हितों के विरुद्ध है अतः श्यामलाल को पद से हटा दिया जाए। दूसरी मांग यह थी कि परसराम वकील को भी पदच्युत कर दिया जाए क्योंकि वह आनुवंशिक वजीर परिवार से नहीं था और उसकी नियुक्ति गैरकानूनी ढंग से हुई थी।

लोगों ने इस अहिंसात्मक आन्दोलन में उत्साह दिखाया और अनेक कष्टों और वजीर की धमकियों की परवाह न करके इसे सफलता पूर्वक चलाये रखा। जब बुशैहर राज्य सरकार कुछ न कर सकी तो यह मामला सुपरिन्टेन्डेन्ट शिमला पर्वतीय राज्य के सामने रखा गया। स्वयं शिमला पर्वतीय रियासतों के सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री जी० वार्नज बुशैहर रियासत में पधारे, लोगों से मिले। उन्होंने लोगों की मांगों को उचित ठहरा कर उन्हें पूरा करने का वचन दिया। इस प्रकार यह अहिंसात्मक आन्दोलन सफल हुआ। इस आन्दोलन का एक अच्छा प्रभाव यह भी हुआ कि तत्पश्चात् राजा ने प्रजा हित की ओर अधिक ध्यान दिया। मन्त्रियों की नियुक्तियों में सतर्कता बरती।

इसी से मिलता जुलता आन्दोलन सिरमौर रियासत में जनता पर रियासत के कर्मचारियों के अत्याचार और करों में वृद्धि के विरुद्ध हुआ था किन्तु उसे बुरी तरह कुचल दिया गया।

छिगा (सामाजिक बहिष्कार) :

इसके अनुसार संतप्त व्यक्ति या परिवार अपने दुःख या अन्याय दूर कराने के लिए दोषी व्यक्ति का सामाजिक बहिष्कार करते थे। इस प्रकार बहिष्कार खुशी के अवसरों पर विशेष कारगर सिद्ध होता है। ग्रामीण समुदाय में विवाह, मेले, उत्सव और धार्मिक कार्य सम्पादन करने के अवसरों पर विभिन्न जातियों और वर्गों का सहयोग अनिवार्य होता है। प्रत्येक व्यक्ति इन अवसरों पर ध्यान रखता है कि कोई भी जाति और सम्बन्धी इसमें शामिल हुए बिना न रहे। अगर कोई जाति समुदाय या सम्बन्धी इसमें शामिल न हो तो यह कार्य सम्पन्न करने वाले व्यक्ति के लोक निन्दा का कारण बनता था। अतः ऐसे अवसरों पर संतप्त व्यक्ति जानता था कि उसकी उचित मांग मनवाने का यह अच्छा अवसर है। इसके अनुसार ही वह अपनी मांग दोषी के सामने रखता और अगर उसकी मांग पूरी न हो या उसे न्याय न मिले तो दोषी का सामाजिक बहिष्कार किया जाता था। इस प्रकार का बहिष्कार केवल निकट सम्बन्धी से ही किया जा सकता है, अपने स्वामी से, बरादरी से, जाति और सम्बन्धियों से।

रूश (असहयोग तथा काम छोड़ो) :

अगर दो या अधिक जनजाति, जाति या भोजों में कोई मनमुटाव का कारण हो या एक जाती का दूसरे के विरुद्ध अन्यायपूर्ण कार्य हो तो यह रूश का कारण बनता था। अतः किसी प्रकार का सहयोग नहीं दिया जाता था जब तक कि आम सभा न हो जिसमें सभी जाति व वर्ग के लोग शामिल होते थे और दोषी पर जाति के रीति-रिवाजों के अनुसार उचित दण्ड लगाकर झगड़ा निपटाया जाता था।

काम रोको के उद्देश्य की प्राप्ति के साधन अलग होते थे जैसे कि अगर किसी निम्न जाति के लोग (लोहार, बढ़ई, कोली, डूम, नाई, चमार) अपने यजमान या स्वामी से न्याय प्राप्त करने

तक निरन्तर चलता रहता था जब तक लोगों की मांग स्वीकार न की जाए जुग्गे का उदाहरण पहले समाप्त होने पर वह अपने प्राणों को अग्नि में समर्पित करके आत्मदाह करता था। यह क्रम तब को उत्तरदायी ठहराया जाता। अब इसके स्थान पर अन्य व्यक्ति जुग्गा बनता था। उसे भी उसी प्रकार मास भर दूरस्थ स्थान पर कुटिया बना कर रखा जाता था और एक मास की निर्धारित अवधि के लिए अपने परम्परागत जाति कार्य को नहीं करते थे। इन सभी के कार्यों का हमारे कृषि समाज में अपना स्थान है जिनके बिना कई काम रूक जाते हैं। दुःख और सुख, जन्म से मृत्यु तक इन जातियों के सहयोग के बिना कार्य चलना असम्भव है। कई बार ऐसा होता था कि ये लोग अपना कार्य तो करते थे पर उन कार्यों के बदले दिया जाने वाला भोजन और देय राशि को स्वीकार नहीं करते थे। इस प्रकार निम्न और दलित वर्ग का उच्च तथा शक्तिशाली व्यक्ति के विरुद्ध यह अहिंसात्मक तरीका था।

ब्राह्मण भी इस साधन का अपने यजमानों के विरूद्ध प्रयोग करते जबकि वे अपने परम्परागत जाति कार्य धार्मिक कार्यों को सम्पन्न करने से इन्कार कर देते। इस प्रकार लोग अपने पारिवारिक व्यवसाय का निषेध करके और सहयोग न देकर रोष का प्रदर्शन करते। इस प्रकार के रोषों की क्षतिपूर्ति या क्षमा मांग कर समझौता कर लिया जाता था।

भूख पाना (अनशन, धरना, आत्म हनन दाव लाना) :

इस हथियार का प्रयोग भी कमजोर वर्ग के लोग अपने से अधिक शक्तिशाली वर्ग और व्यक्तियों के विरूद्ध ही करते थे। इसका अभिप्रायः होता था अपनी मांग की ओर ध्यान दिलाना और प्रेम की अपील द्वारा दोषी के हृदय को पिघलाना। शक्ति और पद अत्याचारों का मुख्य कारण रहा है और यहां पर लोग इसके शिकार हुए हैं। इस हथियार के अनुसार संतप्त व्यक्ति अपने मालिक के घर का सारा कार्य करता था पर भोजन नहीं खाता था। कई बार अपने आपको राह चलते स्वामी के सामने दण्डवत प्रणाम की मुद्रा से लेट जाता था और स्वामी को आगे जाने से रोकता था। कई बार इकट्ठे होकर स्वामी के घर के आगे धरना देते थे और पानी, भोजन स्वीकार नहीं करते थे। वे गले में रस्सी डालकर भी स्वामी को भयभीत करवाते थे कि अगर उनकी या उसकी बात न मानी गई तो वह आत्म हनन कर देगा। इस प्रकार का आत्म हनन एक कोली द्वारा गांव मलोने में किया था। युवतियों द्वारा अपने मनपसन्द वर से विवाह न करवाने पर भी आत्महनन का उदाहरण गांव जखा में मिलता है। लेकिन इसकी लोक स्वीकृति नहीं दी जाती।

जुग्गा (अहिंसात्मक, सत्याग्रह आन्दोलन) :

इस प्रकार का आन्दोलन बिलासपुर रियासत में हुआ। राजा के अन्याय का विरोध करने के लिए (जुग्गा) एक व्यक्ति एक महीने पूर्व राजा के सामने अन्याय के विरुद्ध अपनी मांग रखता था अगर न्याय न मिले तो (जुग्गा) सत्याग्रही व्यक्ति को दूरस्थ स्थान में एक कुटिया बनाकर रखा जाता था जहां गांव वाले उसे अच्छा भोजन कराते और उसका ध्यान रखते। जुग्गा अपने साथ एक गाय एक कुत्ता और एक बिल्ली रखता था। पुनः राजा के समक्ष मांग रख दी जाती थी और मांग पूर्ति के लिए एक महीने की अवधि दी जाती थी। अगर राजा एक महीने के निर्धारित समय में न्याय नहीं देता तो जुग्गा स्वयं, गाय, कुत्ते और बिल्ली सहित आत्मदाह कर लेता जिसके हत्या जन्य पाप के लिए राजा

ब्राह्मणों के प्रसिद्ध गांव पंडतेहड़ा में मिलता है जहां लोगों ने राजा द्वारा भूमिकर से मुक्त (जो राजा की सहायता करने पर पारितोषिक तौर पर मिली थी) भूमि पर कर लगाने के निर्णय को लेकर हुआ था। दूसरा उदाहरण हमें गेहड़वीं में मिलता है जबकि राजा ने भूमि वास्तविक अधिकारी को न देकर अन्य व्यक्ति को प्रदान की थी अतः जुग्गा प्रणाली द्वारा अहिंसात्मक आन्दोलन किया गया और अन्त में राजा को उनकी बात माननी पड़ी। इस प्रकार ये दोनों आन्दोलन अपने उद्देश्य में सफल रहे।

छुआ :

छुआ एक प्रकार का अहिंसात्मक आन्दोलन है जिसके अनुसार प्रार्थी और दोषी दोनों ही किसी देवता के पास जाकर एक बकरा और खाद्य सामग्री देवता को भेंट चढ़ाते हैं इसके पश्चात् कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष का स्पर्श किए हुए भोजन का सेवन तब तक नहीं करते जब तक सत्य का पता न चल जाए और या दोनों पक्षों में सम्मान पूर्ण समझौता न हो जाए। अगर दोनों पक्षों में से किसी व्यक्ति या परिवार पर कष्ट आये तो ऐसा माना जाता है कि देवता ने उस पर छुआ कर दिया है, और उसे अपराधी माना जाता है। दूसरे पक्ष वाले उसे क्षतिपूर्ति या मांग स्वीकार करने पर जोर डालते हैं अन्यथा दोषी का गांव और इलाके में सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है। जनमत के सामने दोषी को झुकना पड़ता है। यह छुआ प्रणाली बुशैहर रियासत में बड़ी प्रसिद्ध रही है और इसकी सफलता के उदाहरण मिलते हैं।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन :

शिमला पर्वतीय रियासतों में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बारे में हमें दृष्टान्त मिलते हैं। बुशैहर रियासत के अन्तर्गत एक रावल ने अपने भाई की निमर्म हत्या करके गद्दी हथिया ली थी। लोग सत्य को जानते थे अतः उन्होंने नये राजा को कर देना बन्द कर दिया अन्य राज्यादेश को मानने से भी इन्कार कर दिया। जब राजा को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तो उसे सत्य स्वीकार करना पड़ा जिसे वह सालों से झूठला रहा था और इसका प्रायश्चित भी करना पड़ा।

इसी प्रकार का सविनय अवज्ञा आन्दोलन सिरमौर रियासत में करों की वृद्धि को लेकर सगड़ाह और लुधियाने में चोकरु लम्बरदार, अछवु और प्रितभ ने राजा के विरुद्ध जन आन्दोलन का नेतृत्व किया था। इसके अनुसार पाभवी, चेगड़ा आदि इलाके वालों ने भूमिकर की अदायगी नहीं की जब तक कि भूमिकर को कम नहीं किया जाता। साथ ही उन्होंने सरकारी कर्मचारियों को किसी प्रकार का सहयोग देने से मना कर दिया। आपसी फूट के कारण आन्दोलन सफल न हो सका और राजा ने आन्दोलनकारियों के मकानों में आग लगा दी।

इन आन्दोलनों की सफलता और असफलता चाहे कुछ भी हो पर लोगों की अहिंसात्मक आन्दोलन में गहरी आस्था अवश्य दृष्टिगोचर होती है।

प्राध्यापक, इतिहास विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
रामपुर बुशैहर, जिला शिमला (हि०प्र०)

अकादमी की गतिविधियां | अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष

चित्रकला प्रतियोगिता तथा बाल-लेखक गोष्ठी

अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के उपलक्ष्य में अकादमी द्वारा दिनांक १३-११-७९ व १४-११-७९ को काली बाड़ी हाल में विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। दिनांक १३-११-७९ को शिमला के सरकारी व गैर सरकारी स्कूलों के छात्र-छात्राओं की चित्रकला, कसीदाकारी तथा भाषण प्रतियोगिताएं आयोजित की गईं इनमें प्रत्येक स्कूल से दो आयु-वर्ग के कुल ८८ मेधावी छात्रों ने भाग लिया। प्रत्येक विधा के दोनों आयु-वर्गों में से पांच-पांच छात्रों को पुरस्कृत किया। पुरस्कार प्रदेश के मुख्य मन्त्री महोदय ने वितरित किए। भाग लेने वाले प्रत्येक छात्र/छात्रा को प्रमाण पत्र, कापी तथा बॉल पैन उनके उत्साह वर्धन के लिए दिए गए। दिनांक १३ व १४ नवम्बर को बाल-साहित्य पुस्तक प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया जिसमें हिमाचली साहित्यकारों द्वारा रचित बाल-साहित्य को प्रदर्शित किया गया। इसके अतिरिक्त प्रतियोगी छात्र-छात्राओं द्वारा बनाई गई कलाकृतियों व कसीदाकारी के नमूनों को भी प्रदर्शित किया गया।

दिनांक १४-११-७९ को हिमाचल के विभिन्न लेखकों की बाल-साहित्य गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी की अध्यक्षता मुख्य मन्त्री महोदय ने की।

अपने अध्यक्षीय भाषण में मुख्य मन्त्री महोदय ने साहित्यकारों व बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहा :

उपस्थित महानुभाव और प्यारे बच्चो !

मैं बैठे-बैठे सोच रहा था कि बाल वर्ष में हम बच्चों के साथ कहीं अन्याय तो नहीं कर रहे। इतने गहन गूढ़ विचार बच्चों को सुना रहे हैं लेकिन मैं समझता हूं कि आज की चर्चा बहुत महत्त्वपूर्ण है। बाल वर्ष में बाल-साहित्य पर विचार करने के लिए यहां बालक भी उपस्थित हैं, यह बहुत अच्छी बात है। दो पत्र यहां पर पढ़े गए। हिमाचल प्रदेश को, हिमाचल प्रदेश की जनता को और हम सब को इस बात का अभिमान है कि यहां जिन दो महानुभावों ने पत्र पढ़े हैं वे हिमाचल प्रदेश के रहने वाले हैं। उन्होंने बहुत कुछ लिखा है और बाल-साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने अपना एक स्थान बनाया है और भी यहां बहुत से लेखक आए हैं। मैं बाल-साहित्य पर लिखने वाले इन सब बन्धुओं का स्वागत करता हूं और उन्होंने जो कुछ भी योगदान किया है साहित्य में, उसके लिए उनका धन्यवाद करता हूं। बाल मनोविज्ञान अलग है बच्चों के सोचने का तरीका बिल्कुल अलग है और इस लिए उनका साहित्य भी अलग ढंग से अलग तरीके

से लिखा जाना चाहिए। मुझे बैठे-बैठे छोटा सा चुटकुला याद आया कि बच्चे किस तरीके से सोचते हैं एक बच्चा घर में थोड़ी शरारत कर रहा था मां को गुस्सा आया उसने उसकी पिटाई कर दी। थोड़ी पिटाई तो सभी की होती है, हमारी भी हुई है। पिटाई होने के कारण बच्चा अपने अन्दर के कमरे की चारपाई के नीचे छुप गया। इस डर से कि पिटाई थोड़ी ज्यादा न हो जाए शाम का समय हो गया उसके पिता जी घर पर आ गए तो उन्होंने बच्चे को ढूंढना चाहा पर बच्चा मिला नहीं तो ढूंढते-२ उनको लगा कि चारपाई के नीचे से आवाज आ रही है। वह तो बच्चे को ढूंढ रहे थे तो बच्चे ने देखा कि पिता जी भी चुपचाप चारपाई के नीचे देख रहे हैं बात क्या है तो बच्चे ने कहा पिता जी आपको भी मम्मी ने मारा है तो यहीं आ जाओ। अब यह अपना-अपना सोचने का तरीका है बच्चा किस स्थिति में क्या सोचता है। बच्चा किस तरीके से किस चीज को ग्रहण करना चाहता है इसका बड़ा बारीक अध्ययन करना बड़ा जरूरी है और उसके मुताबिक बच्चे के लिए लिखना जरूरी है। बच्चे हमारे राष्ट्र का धन हैं, आने वाला कल कैसा होगा? जैसे हमारे आज के बच्चे हैं हम भारत को जैसा बनाना चाहते हैं उसके लिए बच्चे में इन्वैस्टमैंट करना जरूरी है। और इसलिए आधुनिक युग में, आधुनिक सभ्यता में बच्चों के लिए बहुत कुछ सोचा जाता रहा है अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष में सब का ध्यान उस ओर आकर्षित करने की कोशिश हुई है। उसमें उद्देश्य यही है कि बच्चों के लिए ऐसे साहित्य का निर्माण हो जिसमें बच्चों का मानसिक और सर्वांगीण विकास हो यह बहुत जरूरी है क्योंकि बच्चे आने वाले कल को बनाने वाले हैं और उनका जीवन सुखद हो, आनन्दमय हो उसके लिए सब साहित्य की रचना और उनके मानसिक जो धरातल हैं उसके मुताबिक साहित्य की रचना बहुत जरूरी है। बड़े लोग किस प्रकार की पुस्तकें पढ़ सकते हैं वैसी पुस्तकें हम बच्चों के हाथ में नहीं दे सकते क्योंकि उनका एक विशेष मनोविज्ञान है, उनका सोचने का एक तरीका है। इसी लिए जो माताएं थोड़ा सा मनोविज्ञान जानती हैं उनके बच्चे घर में उस ढंग का झंझट पैदा नहीं करते, उनके बच्चे उनके पीछे चलते हैं। लेकिन मैंने आंखों से देखा है जहां माताएं अनपढ़ हैं मनोविज्ञान का क ख ग समझती भी नहीं वहां सिवाय मार पीट के बच्चों को नियन्त्रण करने के, उनके पास कोई बात नहीं रहती। कई बार हमने देखा है कि उसके हाथ में छड़ी है, वह पीट रही है क्योंकि बच्चा किस ढंग से सोचता है यह इस मां को याद नहीं रहता। और हम प्रशिक्षण दे नहीं पाए जहां-जहां मां थोड़ा भी समझती है कि बच्चा किस ढंग से सोच रहा है, किस ढंग से उसे टालना है वह क्या उस वक्त चाहता है। कई बार जिद कर रहे हैं, शोर मचा रहे हैं कहना नहीं मानते, कपड़े नहीं पहनते, मैंने स्वयं देखा है कई बार मैं बाहर से आया हूं और बच्चा शोर मचा रहा है और उधम मचा रहा है उस समय उसको उपदेश दिया जाए तो वह सुनेगा नहीं, बच्चे तुमको बहुत अच्छा बनना चाहिए पड़ौस में लोग क्या सोच रहे हैं अगर यह उपदेश देने की कोशिश की जाएगी तो बच्चा नहीं समझेगा लेकिन बच्चे को एकदम कहा जाए कि बच्चे मैं अभी-अभी आ रहा था बाहर से मैंने एक अजीब बात देखी तो बच्चा सब काम छोड़कर उसके कान इधर आ जाएंगे कि क्या देखा कि जीप जा रही थी उसके आगे एक घोड़ा आ गया। फिर क्या हुआ घोड़ा खड़ा हुआ और जीप को चलने नहीं दिया बच्चा ज़िद भूल जाएगा जो माताएं इस ढंग से कहती हैं उनके बच्चे उनके पीछे चलते हैं जो इस ढंग से नहीं करती उनको हाथ में छड़ी लेकर उनके पीछे चलना पड़ता है। इसी प्रकार साहित्य भी कैसा हो बच्चा क्या पढ़ना चाहता है वह कहानी के रूप में कोई

चीज सुनना चाहता है तो उपदेश के रूप में वह नहीं सुनेगा वह ओझल हो जाएगा उसके मस्तिष्क पर वह चीज ठहरेगी नहीं। इसलिए बच्चे का मनोविज्ञान, बच्चे का काम करने का तरीका और किस आयु में किस चीज को ग्रहण करना चाहते हैं यह बातें बहुत जरूरी हैं इसलिए मैं समझता हूं कि यह जो आपकी गोष्ठी हो रही है इसके द्वारा इन कुछ समस्याओं पर विचार करके अच्छे साहित्य का सृजन हो हमारे बच्चे अच्छा साहित्य पढ़ें। उस साहित्य को पढ़ कर बच्चे अच्छे बनें, बच्चे निर्भीक हों बच्चे ईमानदार हों यह बहुत जरूरी है डा० कपूर जी ने यह बात यहां पर की है मैं यहां तक सहमत हूं कि उपदेश और नैतिकता, नैतिकता के रूप में नहीं थोपी जानी चाहिए लेकिन आने वाला कल हमको सुखद बनाना है तो किसी न किसी रूप में उन सब बातों का शिक्षण देना बहुत जरूरी है। आज अगर कुछ गलत है उसका कारण यही है कि हमने मनोवैज्ञानिक तरीके से आज की पीढ़ी जब बालपन में थी तो उसका सही प्रशिक्षण नहीं किया। आज जो बच्चे स्कूलों में हैं, माताओं की गोदों में हैं उनको सही प्रशिक्षण किस ढंग का देना है मैं आप से सहमत हूं कि उपदेशात्मक तरीके से बच्चे को नैतिकता की शिक्षा देना बिल्कुल गलत है लेकिन बच्चे को किस तरीके से शिक्षा दी जाती है बच्चा रहस्य को पसन्द करता है। आज छोटे-छोटे बच्चों के हाथों में जासूसी नावल मिलेंगे क्यों मिलते हैं क्योंकि उस की प्रवृति है वह जिसमें कुछ नया रोमांच, कुछ रहस्य है वह चीज़ बच्चा देखना चाहता है, सुनना चाहता है तो उसके मुताबिक कोई ऐसी चीज जिसके द्वारा निर्माणात्मक शिक्षा बच्चे को प्राप्त हो सके क्या हम वह नहीं दे सकते। मैं यह समझता हूं कि भारत के इतिहास के अन्दर कुछ ऐसी घटनाएं हैं विशेषकर क्रांतिकारी इतिहास के अन्दर इतना रहस्य है कि १४ वर्ष का खुदीराम बोस देश को आज़ाद कराना चाहता था उसके दिल के अन्दर एक तड़प पैदा हुई। उसने बम बनाया बम हाथ में लिया विदेशी के ऊपर उसने चलाया उससे वह आदमी मर गया इस प्रकार की घटनाओं का इतना भंडार सारे देश के अन्दर है उसको किस तरीके से बच्चे के सामने रखना है कि बच्चे की रहस्य के बारे एक रोमांच के बारे उसकी जो प्रकृति है वह किसी जासूसी नावल की ओर प्रवृत न होकर के हमारे देश की इस धरोहर जो गौरवशाली धरोहर है उसकी ओर हो। वह अपने इतिहास में से उन कड़ियों को ढूंढ़ सकते हैं उनको किस तरीके से बच्चे के सामने रखना है इसका एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हमारे लेखक को करना है और जिसके आधार पर हमारे बच्चे अधिक प्रसन्न होकर जीवन व्यतीत कर सके अपनी जिन्दगी में सफल हो सकें। वह अच्छे नागरिक बन सकें एक अच्छे भारतीय बन सकें, जो इमानदारी के साथ अपना जीवन व्यतीत करते हों, उन्होंने यह बात कही कि जो लोग स्वयं ठीक नहीं वह उपदेश देने की कोशिश करते हैं। यह बात ठीक है लेकिन ऐसा उपदेश उन्हें और मुझको किसी न किसी रूप में देना है। यह तो बात नहीं कि आज की पीढ़ी बच्चों को प्रशिक्षित न करे मैं तो समझता हूं कि बाल साहित्य बच्चों के विज्ञान, उनकी क्षमताएं उनकी मर्यादाएं उनको ध्यान में रखकर के लिखा जाना चाहिए। आखिर अन्ततोगत्वा हमारा लक्ष्य क्या है। अन्ततोगत्वा हमारा निशान। हमारा लक्ष्य यह है कि अच्छा समाज सुखद बने, अच्छा भारत बने यह सब की मंजिल वहीं है मेरी जिन्दगी बड़ी सुखद हो यह अन्तिम मंजिल सामूहिक जीवन की है हम एक समाज में रह रहे हैं हम दस हजार साल पहले या एक लाख साल पहले के समाज में नहीं रहे जब तक हर एक की जिन्दगी अलग थी और उसका जीवन व्यक्तिवादी था। आपकी जिन्दगी का मेरी पर असर है मेरी जिन्दगी का आप पर असर है इसलिए सामूहिक चिन्तन

राष्ट्रीय चिन्तन की ओर हमको ध्यान देना होगा। ऐसी किताबें, ऐसा साहित्य जिस में अन्त में एक ऐसे नैतिक ईमानदार समाज की रचना हो जिसमें राष्ट्रीयता की भावना हो, जिसमें भक्ति की भावना हो। इस प्रकार के संस्कार परोक्ष रूप में पड़े, मैं इस बात से सहमत हूं कि सीधे इस बात का उपदेश देने में हम बच्चे में उस चीज का विकास नहीं कर सकते जिस चीज का हम विकास करना चाहते हैं लेकिन परोक्ष रूप में ठीक तरीके से उनकी क्षमताओं मर्यादाओं का ध्यान रखकर हमें यह भावनाएं देनी पड़ेंगी, देश भक्ति की, राष्ट्र भक्ति की, इमानदारी की, निडरता की यह सारी बातें हमें उन्हें किसी न किसी रूप में देनी होंगी। चाहे वह कहानी के रूप में महापुरुषों के जीवन के उदाहरण के रूप में, वह उपन्यास के किसी पात्र के रूप में हम देंगे तो बच्चे उसे बहुत जल्दी ग्रहण करेंगे। मैं यह समझता हूं कि इस बाल वर्ष में बाल साहित्य पर विचार बहुत आवश्यक है और इसके द्वारा बाल साहित्य का निर्माण हो मैं यह समझता हूं कि बाल साहित्य के निर्माण में और साहित्य के निर्माण में सभी का योगदान होना चाहिए, सरकार का भी योगदान होना चाहिए लेकिन लेखक सरकार पर आश्रित रहे यह स्थिति मैं अच्छी नहीं समझता क्योंकि मुझे लगता है जिस चीज का सरकारीकरण हो जाता है उस चीज का कई बार स्तरीकरण नहीं होता उसका स्तर नहीं रहता और वैसे भी मैं तो यह विश्वास करता हूं कि सरकार को सरकार चलानी चाहिए। 'गावरमेंट शुड गोवर्न' हर चीज सरकार करे मुझे इस बात का संकट लग रहा है कि हर चीज सरकार पर आश्रित होती जा रही है मैं आज कुछ मित्रों से इसी समस्या पर बात कर रहा था तो मैंने उनको कहा कि बड़ी अजीब स्थिति आ रही है कि लोग जब किसी चीज को बीजते हैं अपने खेत में तो कहते हैं कि बीज सरकार दे। सरकार बीज देती है फिर कहते हैं इस पर सबसीडी मिलनी चाहिए सरकार सबसीडी देती है फिर कहते हैं कि इनमें जो खाद लगती है उसका प्रबन्ध सरकार करे। सरकार इन्तजाम करती है फिर कहते हैं इसमें सबसीडी चाहिए सरकार सबसीडी देती है फिर कहते हैं यह बिक नहीं रही है सरकार बेचे। तो क्या होगा हमारी सारी जिन्दगी का सरकारीकरण हो जाएगा। पुस्तकें भी सरकार लिखे पुस्तकें भी सरकार बेचे फिर आखिर जीवन कहां रहेगा तो सरकार समाज, सरकार साहित्य, सरकार और लेखक इनकी मर्यादाएं जरुर रहनी चाहिए और मैं समझता हूं कि कम से कम बाकि सब चीजें सरकार के आश्रित हो जाएं मुझे चिन्ता नहीं होगी जिस दिन देश का लेखक सरकार के आश्रित हो गया उस दिन यह देश नहीं रहेगा। लेखक सरकार से ऊपर होना चाहिए लेखक और साहित्यकार सरकार से ऊपर रहना चाहिए ताकि वह सरकार की आलोचना कर सके। यदि वह सरकार के आश्रित होगा तो सरकार की आलोचना नहीं कर सकेगा और लेखक जिस दिन स्वतन्त्र नहीं रहेगा वह जिस दिन स्वतन्त्र चिन्तन नहीं कर सकेगा उसके स्वातन्त्र्य पर जिस दिन ऊपर से कोई दबाव पड़ जाएगा उस दिन वह लेखक नहीं रहेगा। उस दिन वह साहित्यकार नहीं रहेगा तो वह पुराने समय के राजाओं के दरबार में जो कुछ लिखा जाता था वही मात्र रह जाएगा। आज के साहित्य की कल्पना वह नहीं है यहां तक मैं सहमत हूं कि लेखक को उसका परिश्रेय मिलना चाहिए उसकी इस प्रकार की परिस्थितियों का निर्माण होना चाहिए कि वह स्वतन्त्र रूप से लिखे वह जो लिखता है वह बिक सके प्रकाशक जो है वह उसका शोषण न करे यह बिलकुल ठीक है क्योंकि प्रकाशक आज लेखक का शोषण करता है जिनका शोषण होता है उनमें मैं भी एक हूं। वैसे तो मैं लेखक नहीं हूं मैं तो लेखक तब होता हूं जब जेल में बन्द हो जाता हूं जब जेल से बाहर निकलता हूं तो

पोलीटिशिएन बन जाता हूं। लेकिन यह ठीक स्थिति है इस प्रकार की एक स्थिति निर्माण होनी चाहिए कि लेखक को परिस्थितियां मिलें अनुकूल परिस्थिति हो।

लेकिन लेखक के सामने कुछ संघर्ष न हो वह जो लिखता है सरकार छापती है बेच देती है तो मुझे नहीं समझ आता कि फिर लेखक क्या लिखेगा। मुझे लगता है कि लेखक फिर लिख नहीं सकता क्योंकि लेखक कब लिखता है, रचना कब होती है, सृजन पीड़ा से होता है। पीड़ा के बिना सृजन नहीं हो सकता, प्रसव पीड़ा से सृष्टि का निर्माण होता है यह प्राकृति का नियम है। बिना पीड़ा के, बिना संघर्ष के, बिना चोट के रचना नहीं हो सकती। मैं आजकल राजनीति में हूं लिखने का बिल्कुल समय नहीं मिलता लेकिन जब कभी चोट पहुंचती है तो स्वयं लिखा जाता है। बिना चोट के लिखा नहीं जाता, बिना पीड़ा के, बिना टीस के कविता की रचना नहीं होती और जो होती है वह कविता नहीं होती। जिस के पीछे कोई पीड़ा नहीं है, जिस के पीछे कोई चोट नहीं है, जिस के पीछे कोई दर्द नहीं है, जिसके पीछे कोई संघर्ष नहीं है वह साहित्य की उत्कृष्ट रचना बन ही नहीं सकती इस लिए मैं चाहूंगा कि हमारे लेखक सरकार पर आश्रित न करे, सरकार का फर्ज है, सरकार फर्ज को निभायेगी। ऐसी परिस्थितियां बने कि उनकी रचनाओं का ठीक से सम्मान भी हो और ऐसी परिस्थितियां बने कि उनका प्रकाशन भी हो, उसमें सहयोगी के रूप में, परिस्थितियां उत्पन्न करने के सहयोग में सरकार को, विभाग को आना चाहिए लेकिन सारे का सारा काम सरकार करे उस से स्वतन्त्र चिन्तन को आघात पहुंचेगा ऐसा मुझे लगता है। मैं यहां पर जो पत्र पढ़े गए, उन दोनों को बधाई देता हूं। मैंने जैसे कहा कि हमें बड़ा गौरव है कि हिमाचल प्रदेश के लेखक बाल साहित्य के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़े हैं यह हम सब के लिए गौरव का विषय है और मैं अकादमी, साहित्य अकादमी को भी इस बात का धन्यवाद व बधाई देता हूं जिन्होंने कि इस बहुत बड़े काम को अपने हाथों में लिया है। हिमाचल प्रदेश का एक-एक पत्थर कुछ कहना चाहता है, हिमाचल प्रदेश की एक-एक घाटी के पास कुछ है कहने के लिए लेकिन उसको सुनने की कोशिश नहीं की गई है। मैं चाहूंगा कि यह साहित्य अकादमी जिसमें अच्छे-अच्छे लेखक और विचारवान लोग हैं वह इस प्रकार योजना बनाएं। मुझे लगता है इसमें बहुत बड़ा अभाव है। हिमाचल प्रदेश में ऐसे स्थल हैं जो इतिहास और संस्कृति की कई कड़ियों को मिला सकते हैं। रिवालसर के अन्दर कुछ ऐसा है, मुझे धर्मवीर भारती जी ने, पिछले दिनों वह हिमाचल प्रदेश में आये थे, उन्होंने तन्त्र और बौद्ध साहित्य का बहुत अध्ययन किया है, उन्होंने कहा कि उसके अन्दर एक बड़ी कड़ी है जो मिलती नहीं, उसका जवाब मुझे रिवालसर के अन्दर मिला, अब वह क्या है इस पर शोध होना चाहिए। हमारे पुराने समय के किले हैं, मन्दिर हैं। कुछ ऐसे स्थान हैं जहां रासबिहारी बोस के जीवन की एक अनुपस्थित कड़ी, वह केलोंग के भीतर मिलती है, वह केलोंग में कितने दिन वहां पर रहे। सुभाषचन्द्र बोस डलहौजी में रहे। रविन्द्रनाथ ठाकुर की स्मृति नामक रचना छपी, १५ वर्ष की आयु में डलहौजी में लिखी है, वह मकान आज है वहां। इतनी बहुत बातें हिमालय के क्षेत्र में, मनु की मनाली, ऋषि मुनियों की धरती इसमें इतना कुछ है कि यहां का एक-एक पत्थर, एक-एक कण कुछ कहना चाहता है। हमारा दुर्भाग्य रहा कि उसके सुनने की कोशिश नहीं हुई, उसमें लेखकों की कमी भी हैं, सरकार की कमी भी है। मैं चाहूंगा कि हमारी साहित्य अकादमी कुछ

नया क्रान्तिकारी कार्यक्रम बनाए और इस प्रकार के काम करने में सरकार की ओर से जो वह चाहेंगे पूरा सहयोग दिया जायेगा। मैं इस कार्यक्रम के लिए बधाई देता हूं। जो लेखक यहां पर और भी आये हैं वे बिचार विमर्श करेंगे बाल साहित्य के बारे में उन सब को अपनी शुभ कामनाएं देता हूं और जो बच्चे आये हैं जिन्होंने अपने बारे में जो साहित्य सृजन होना है उसे शान्ति के साथ सुना है उन्हें भी बधाई देता हूं। एक बार फिर आप सब को इस कार्यक्रम के लिए बधाई।

इसके अतिरिक्त गोष्ठी में दो विद्वानों डा० मस्तराम कपूर तथा श्री सन्तराम वत्स्य द्वारा बाल साहित्य सम्बन्धी शोध पत्र पढ़े गए। हिन्दी बाल साहित्य समस्याएं और समाधान विषय पर अपना विचार व्यक्त करते हुए श्री सन्तराम वत्सय ने कहा कि बालकों के स्वस्थ मनोरन्जन एवं आत्मिक विकास के लिए बाल साहित्य को एक विशिष्ट भूमिका निभानी है जैसे बालक के शारीरिक विकास के लिए पहली आवश्यकता पोषाहार की है वैसे ही उसके मानसिक विकास के लिए स्वस्थ साहित्य भी पहली आवश्यकता है। हिन्दी में बाल साहित्य में जो कार्य हुआ है उस पर दृष्टि डालने से जो तथ्य उभर कर आते हैं उनमें—

१. मौलिक बाल-साहित्य की कमी।
२. विदेशी पुस्तकों के अनुवाद अधिक तर स्तरीय अनूदित साहित्य की कमी।
३. भारत की प्रादेशिक भाषाओं के बाल साहित्य का अनुवाद नहीं।
४. लोक कथाओं के सम्पादन अथवा पुनर्कथन में वैज्ञानिक विधि का अनुसरण नहीं।
५. कथा कहानी, जीवनी, विज्ञान आदि विषयों में परिमाण की दृष्टि से भले ही अधिक साहित्य उपलब्ध है पर बालकों की भाव भूमि का सम्यक ध्यान नहीं रखा गया है।
६. उपन्यास, नाटक, यात्रा साहसिक अभियान, खेलकूद, गीत-कविता आदि क्षेत्रों में अधिक साहित्य सर्जन नहीं हुआ है।
७. भूगोल, इतिहास, पुरातत्व, ललित कलाएं आदि विषयों में तो कुछ लिखा ही नहीं गया।
८. कुछ बाल पत्रिकाएं निस्संदेह बालकों में पढ़ने के प्रति रूचि उत्पन्न करने का अच्छा कार्य कर रही है इस पर भी वे बहुधा फार्मूलों से उठकर कुछ अधिक नया नहीं दे पा रही है।
९. आकाशवाणी के बाल कार्य-क्रमों में साहित्य के बजाए अन्यान्य विषयों की भरपूर सामग्री रहती है, पर वह साहित्य की सहायक भले ही हो पूरक कभी नहीं।

बाल साहित्य को एक स्वतन्त्र साहित्य विधा बताते हुए श्री वत्स्य ने अपेक्षा की कि लेखक को बाल साहित्य की रचना करते समय पाठक के मानसिक विकास, रूचि, भाव और भाषा ज्ञान की सीमाओं को अच्छी तरह अपने सम्मुख रखना होगा अतः बालकों की अवस्था के दृष्टिगत बाल साहित्य को दो वर्गों में बांटा जा सकता है :— पहला वर्ग ७ से १० वर्ष दूसरा वर्ग ११ से १४ वर्ष। प्रथम वर्ग के बालक कल्पनाशक्ति और घटना प्रधान रचनाओं को पसन्द करते हैं। अतः पुस्तक छोटे आकार की सरल भाषा में, मोटे टाईप में चित्रों से भरपूर ३२ पृष्ठों से अधिक न हो। पुस्तक पूरी तरह खुल सके इसलिए उसका सैंटर स्टिज हो। पुस्तक का कवर मजबूत और सुन्दर रंगीन डिजाइन का होना चाहिए।

११ से १४ वर्ष के बालक सामाजिक जीवन की ओर उन्मुख होते हैं। इस वर्ग के बालक पुराण, इतिहास, जीवनी, यात्रा, खेल कूद तथा वीर पूजा से सम्बन्धित रचनाएं पसन्द करते हैं। वे बाल विश्व-कोष, निबन्ध, पुराण तथा इतिहास, भूगोल के माध्यम से भी अपने ज्ञान को बढ़ाते हैं।

श्री वत्स्य ने इस बात पर बल दिया कि साहित्य के निर्माण में बाल साहित्यकारों को महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना परम आवश्यक है। इसके लिए प्रशंसा, सम्मान, पुरस्कार, अभिनन्दन आदि अन्यान्य उपायों का आश्रय लिया जा सकता है। ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जानी चाहिए जिनसे अभाव के क्षेत्रों में बाल साहित्यकार अपनी अभिनव मौलिक कृतियों से साहित्य को ऐसा सम्पन्न एवं समृद्ध बनाए जिससे बाल साहित्य की एक-एक गौरवमयी परम्परा का सूत्रपात हो सके।

डा० मस्तराम कपूर ने बाल साहित्य और बाल मनोविज्ञान पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि प्रायः यह भ्रम रहा है कि बाल मनोविज्ञान का निष्णात हुए बिना बाल साहित्य की रचना नहीं हो सकती। बाल शिक्षा के क्षेत्र में भी और बाल साहित्य के क्षेत्र में भी बाल मनोविज्ञान पर जरूरत से ज्यादा जोर दिए जाने के फलस्वरूप हम सिद्धान्तों के ऐसे दल दल में फंस गए हैं जहां से निकलना बहुत कठिन दिखाई दे रहा है। मनोविज्ञान की डिग्री हासिल करने के स्थान पर यदि हम मानसिक जगत की कुछ मूलभूत बातों को जान लें तो हमारा काम आसान हो सकता है। बच्चे के मानसिक जगत के दो प्रकार के कोष जन्म से ही बनने लगते हैं। यदि बच्चा अपनी अनुभूतियों को चेतन मन से नहीं परख पाएगा तो उसके व्यक्तित्व पर बचपन की भीतियां, असुरक्षाएं, दुर्बलताएं आदि हावी होंगी। बच्चे की मूल प्रवृतियों का निर्माण साढ़े पांच या छः वर्ष से पहले-पहले हो चुकता है अतः यह बहुत जरुरी है कि बच्चे की स्कूल पूर्व की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाए।

साहित्य और कलाओं का मुख्य काम उस प्रक्रिया को तीव्र करना है जिससे बच्चा अपने अनुभवों और सीखे ज्ञान को परखता है। बाल साहित्य ही नहीं सभी प्रकार के साहित्य का प्रमुख काम यह है कि वह ऐसी बात कहे जिसे अधिकांश पाठक कहना तो चाहते हैं लेकिन कह नहीं पाते। हितोपदेश में कथा के बल से शिक्षा देने की बात तथा यह धारणा कि साहित्य उसी सीमा तक उपयोगी है जिस सीमा तक वह कक्षा अध्यापक के काम में योग दे सकता है, इन दो भ्रान्तियों के कारण हमारे बाल साहित्य में उपदेश और शिक्षा का तत्व इतना अधिक हो जाता है कि वह मशीन बन जाता है। बाल साहित्य बच्चे की एक बहुत बड़ी जरुरत है परन्तु बाल साहित्य का दुर्भाग्य यह रहा है कि इसमें गम्भीर चिन्तन हुआ ही नहीं। वैसे सामान्य तथा बच्चे की छः मूल आवश्यकताएं हैं जिनकी पूर्ति बाल साहित्य से होती है। ये आवश्यकताएं हैं :—

१. सुरक्षा की आवश्यकता।
२. आत्मीय सम्बन्ध की आवश्यकता।
३. प्यार करने और प्यार पाने की आवश्यकता।
४. कुछ प्रशंसनीय कार्य करने की आवश्यकता।
५. परिवर्तन या नीरसता से मुक्ति की आवश्यकता।
६. सौंदर्यनुभूति की आवश्यकता।

बच्चे की इन मूल आवश्यकताओं की पूर्ति का सबसे शक्तिशाली माध्यम इस समय अच्छा बाल साहित्य ही है। स्कूल पूर्व की अवस्था के बालक में भाषा ज्ञान का त्वरित विकास होता है जिसके कारण वह शब्दों की ध्वनि, संगीत, लय आदि की ओर आकृष्ट होता है, बेतुकी कल्पना उसका प्रिय साहित्य होता है सतत क्रियाशीलता और अल्पकालिक एकाग्रता के कारण उसे मोटे टाईप, बिखरे पाठ भरपूर चित्रों आदि वाली कम समय में समाप्त होने वाली पुस्तकें अच्छी लगती हैं चूंकि वह अहं केन्द्रित होता है अतः वह ऐसी कहानियों को पसन्द करता है जिनमें उसकी विशेष भूमिका हो। वह कल्पना के खेल खेलने में मजा लेता है इसलिए निर्जीव वस्तुओं को प्राणवान और मूक प्राणियों को बातचीत करने वाला देखना चाहता है। इस वयोवर्ग के साहित्य के प्रमुख रूप हैं : चित्र कथाएं, शिशु गीत, आसपास के सुपरिचित जीवन की कहानियां, पशु कथाएं आदि। धीरे-धीरे बालक को घर की दुनियां के लाड-प्यार के स्थान पर क्रूरता और निष्ठुरता से भी साक्षात्कार करना पड़ता है इसलिए उसे अपने भीतर ही एक शक्ति केन्द्र बनाने की आवश्यकता पड़ती है। अहं-केन्द्रिता को छोड़ कर समाज केन्द्रित होने लगता है नई दुनियां की असुरक्षित स्थिति से बचने के लिए वह पलायन का साहित्य, परिकथाएं, लोककथाएं आदि पढ़ना चाहता है। नई दुनियां को समझने के लिए उसे यथार्थ कहानियों की जरूरत पड़ती है। यथार्थ कहानियां, मानवीय वेशभूषा और बोली वाले पशुओं की नीति कथाएं, परी कथाएं और लोक कथाएं और रहस्य रोमांच की कथाएं इस वर्ग का विशेष साहित्य माना जाता है। जब बच्चा और बड़ा हो जाता है तो असीम सहनशक्ति, गति व तीव्रता के कारण साहसिक कार्यों के प्रति उसका रुझान हो जाता है। इसलिए इस अवस्था के साहित्य में साहसिक कथाएं, दुर्गम प्रदेशों की यात्राएं, शिकार, युद्ध, जान जोखिम की कहानियां उसे प्रिय लगती हैं। हाई स्कूल की अवस्था का बालक किशोरावस्था का बालक होना है वह अपने जीवन के मूल्यों की खोज करने लगता है। चूंकि इस आयु में यौन भावना का विकास होता है इसलिए अच्छी कथाओं के अभाव में वे सस्ती सैक्स कहानियों की ओर झुकते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें खेलकूद, जीवन यात्रा, शिकार, साईंस, फिक्शन व्यावसायिक सफलता आदि की कहानियां दी जानी चाहिए बच्चे को किस अवस्था में किस प्रकार के साहित्य की जरूरत होती है क्यों होती उसे क्या रूचिकर लगता है कौन सा साहित्य उसके बौद्धिक विकास में सहायक होता है इत्यादि प्रश्नों के लिए हमें मनोविज्ञान की आवश्यकता पड़ती है।

अन्त में डा० मस्तराम कपूर ने कहा कि जब तक बच्चे के लिए किए जाने वाले किसी भी काम की हमारी इमानदारी नहीं झलकेगी, हमारे प्रयास व्यर्थ होंगे।

बालकों के लिए लोक-कथाएं विषय पर बोलते हुए श्री हरिराम जसटा ने कहा कि ऐसी पुस्तकें जो बच्चों की आत्मा में सार्वलौकिक जीवन के प्रति उनके मन में आस्था उत्पन्न करे, साहस के प्रति आदर जागृत करे तथा वाह्य ज्ञान के साथ-साथ अन्तर्ज्ञान भी दे सके, प्रकाशित की जानी चाहिए। इस विज्ञान और तकनीकी आविष्कारों के युग में मानव अत्यन्त व्यस्त रहता है। परिवार में माता पिता या बूढ़ों को इतना समय नहीं रहता है कि वह बच्चों को कुछ समय देकर परम्परागत रूप से लोक-कथाए सुना सकें इसलिए बालक को तनाव से मुक्ति प्राप्त करने के लिए किसी बालोपयोगी पुस्तक का सहारा खोजना होता है। विभिन्न प्रकार की बाल कथाओं के प्रति बच्चों की रुचि का अध्ययन करने के लिए अमेरिका में हुए एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि एक सामान्य बालक अपनी सामान्य पाठ्य पुस्तकों की अपेक्षा चित्रों की कथा पुस्तकों के माध्यम से

१२ गुणा अधिक अन्य पाठ्य सामग्री पढ़ता है। प्राचीन साहित्य में हितोपदेश और पंचतन्त्र की कहानियां व्यवहार बुद्धि से सम्बन्धित होने के कारण प्रौढ़ों के उपयोग की हैं, उनके बारे में यह नहीं कह सकते कि वे केवल बच्चों के लिए हैं। पिछले एक दो दशक पहले तक भारत में बाल साहित्य के प्रकाशन की कमी का मुख्य कारण पाठकों की कमी रही है। आज के युग में कुछ लोगों का विचार है कि राजाओं-रानियों, भूतों-प्रेतों, राजकुमारों-प्ररियों और देवी-देवताओं की लोक-कथाएं बालकों के लिए उपयुक्त नहीं इसकी अपेक्षा बालकों को ऐसी कहानियां सुनाई जानी चाहिए या लिखी जानी चाहिए जिनका चरित्र चित्रण, साधारण व्यक्ति और दैनिक समस्याओं को यथार्थ पर लेकर आधारित हो। बाल-साहित्य हल्का फुल्का हो कहने के अनुसार परि कथाएं, भूत-प्रेत कथाएं, बात चीत करते जानवर, राजा-रानी की कथाए, देवी-देवताओं की कथाएं यथार्थ पर आधारित नहीं हैं परन्तु उनमें सारा ताना बाना एवं सामग्री विद्यमान है जिसमें बच्चे रुचि लेते हैं और बड़े चाव से पढ़ते हैं जिनके द्वारा प्रेरणादायक सन्देश निखर उठता है और चमकता है।

डा० आत्माराम शर्मा ने भारतीय अंग्रेजी उपन्यासों में बच्चे विषय पर अपने विचार व्यक्त किए और कहा कि अंग्रेजी उपन्यासकारों की दूसरी पीढ़ी के उपन्यासों में बच्चों का काफी वर्णन है यद्यपि अधिक बल मानवीय सम्बन्धों पर ही दिया गया है।

तीन बड़े उपन्यासकारों, आनन्द, नारायण और राजा-राओ ने अपने-अपने ढंग से माता-पिता और बच्चों के सम्बन्धों पर बल दिया है। अपने आत्म कथात्मक उपन्यासों सेवन समरज़, मार्निग फेस और कन्फेशन ऑफ ए लवर में आनन्द ने बाल नायक कृष्ण की संज्ञा के माध्यम से देखे गए जीवन का ही चित्रण प्रस्तुत किया है।

विभिन्न उपन्यासों जैसे टू वर्जिन्स नेकटर इन ए लीन गेम्स एट ट्वाइलाईट, टू मैनी भंगरज़ टू लीवज एण्ड ए बड, द कैट एण्ड द शेक्सपीयर तथा द विल्लेज के बाल पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट किया कि बच्चों के यह चित्रण भारतीय समाज की विभिन्न विशेषताओं को प्रकाश में लाने के सजीव माध्यम हैं। बड़े हो रहे बच्चे प्रायः वर्तमान पद्धति को न पसन्द करते हैं और इसके विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर देते हैं उनके माध्यम से उपन्यासकार कई बार युवावस्था और वृद्धावस्था के बीच संघर्ष को प्रस्तुत कर देता है। भारत के अंग्रेजी उपन्यासों में बच्चा प्राय: कुछ सुदृढ़ भावों जैसे कि असुरक्षा भय, घबराहट, निस्सहायता आदि का भयावी रूप है।

डा० प्रत्यूष गुलेरी ने **"बालकों के लिए पहाड़ी बाल साहित्य"** पर विचार रखे तथा कहा कि पहाड़ी साहित्य में जब हम बाल साहित्य पर विचार करते हैं तो वह और भाषाओं के रचित बाल साहित्य के समक्ष नगण्य प्रतीत होता है। पहाड़ी का लोक साहित्य समृद्ध अवश्य रहा है किन्तु बालक की वहां अधिकतर उपेक्षा की गई है यही बात पहाड़ी के वर्तमान रचित साहित्य पर भी घटित होती है। उन्होंने सुझाव दिया कि पहाड़ी के सुधी साहित्यकारों को बालकों का साहित्य रचते हुए बालकों की प्रवृतियों का ध्यान रखना जरूरी है। बच्चे हास्य कविताएं सुनकर प्राय: बहुत प्रसन्न होते हैं अत: पहाड़ी में ऐसी कविताएं लिखकर बाल साहित्य में नया नींव पत्थर रखा जा सकता है। पहाड़ी मे बाल पत्रिका का प्रकाशन भी होना चाहिए।

"बालको को तकनीकी शिक्षा की आवश्यकता" विषय पर बोलते हुए श्री कृष्ण कुमार नूतन ने कहा कि इस मशीनी युग में व्यवहारिक शिक्षा के बिना हर आदमी अधूरा है। तकनीकी

शिक्षा में जहां एक ओर माता-पिता को बच्चे का कारोबार ठीक होने से राहत मिलेगी तो दूसरी ओर बच्चे की काम करने की आदत बनेगी तथा घर में खराब छोटी मोटी मशीनरी को वह स्वयं ही ठीक करने में सक्षम होगा। बेकारी की समस्या के सुलझाने के लिए भी तकनीकी शिक्षा एक अच्छा माध्यम है।

बच्चों के लिए पहेलियों का महत्त्व विषय पर प्रकाश डालते हुए श्री काहनसिंह जमाल ने कहा कि पहेलियों के माध्म से बच्चों की विचार शक्ति बढ़ती है। बच्चों के मनोरंजन का सबसे अच्छा माध्यम है जिसमें वह व्यस्त भी रहते हैं। श्री जमाल ने पहाड़ी भाषा में पहेलियां लिखे जाने की आवश्यकता पर बल दिया।

इस गोष्ठी के लिए कुछ साहित्यकारों ने अपने विचार लिखित रूप से प्रेषित किए।

हिन्दी साहित्य में बाल गीत विषय के सम्बन्ध में श्री रामकृष्ण कौशल के विचार थे कि हिन्दी में केवल सोहनलाल द्विवेदी को बाल कविताएं प्रस्तुत करने का श्रेय है। प्रदीप ने भी श्रेष्ठ ठोस बाल रचनाएं की हैं जिन्हें अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त हुई है। उर्दू साहित्य में मुहम्मद अकबाल की कतिपय रचनाएं श्रेष्ठ बाल कविताओं का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। पण्डित विष्णु शर्मा की रचनाएं संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है।

काव्य लेखन पर श्री खेमराज गुप्त द्वारा प्रेषित विचार इस प्रकार थे: काव्य लेखन के लिए सूझ बूझ का होना नितान्त आवश्यक है। कवि को पहले स्वयं बालक की तरह सोचना पड़ेगा। दूसरी बात यह कि जिस क्षेत्र के लिए काव्य लेखन होता है उस क्षेत्र के सम्बन्ध में पहले उन्हीं शब्दों को लड़ियों में पिरोना होगा। साधारण शब्दों में काव्य लेखन होना चाहिए।

चित्रकला/मूर्तिकला तथा बालक विषय पर अपने विचार श्री महेश सक्सेना ने अपने आलेख में प्रस्तुत किए। उनका विचार है कि कला मनोविज्ञान की दृष्टि से मानसिक तथा अनेक शारीरिक रोगों से मुक्ति दिलाती है क्योंकि विकृति विज्ञान के अनुसार कला एक प्रोजेक्टिव टेकनिक है। बालकों में कला द्वारा सौन्दर्य बोध, व्यवस्था, अनुशासन, कल्पना, स्मृति, अन्वेषणा, सामान्जस्य तथा रचनात्मक अनेकों गुणों का पोषण होता है। आज पश्चिमी देशों में बाल कला, कला का एक महत्त्वपूर्ण तथा रोचक आवश्यक अंग बन गया है। विद्वानों का मत है कि बाल कला में प्रौढ़ कला की अपेक्षा अधिक सरलता, सौम्यता तथा सत्य के दर्शन होते हैं। जिस प्रकार बालक भावी पीढ़ी के निर्माता या नींव के पत्थर हैं ठीक उसी प्रकार बाल कला (चित्र व मूर्ति कला) आने वाली पीढ़ी व समाज को सौन्दर्य बोध का रसपान करा कर त्रस्त विश्व को शान्ति प्रदान करने का मूल मन्त्र बन सकती है।

श्री बालकराम नागर ने अपना आलेख बाल-साहित्य रेडियो और टेलिविजन द्वारा सम्प्रेक्षण इस अवसर पर भेजा। उनके विचार इस प्रकार थे। जहां तक टेलिविजन का सवाल है, हमारे यहां यह अपेक्षाकृत एक नया माध्यम होने के नाते, बच्चे उसकी ओर ज्यादा आकर्षित होते हैं। घण्टों उसके पास बैठना पसन्द करते हैं।

हमारे देश में जहां बच्चों के मनोरंजन के साथ सीमित हैं, आकाशवाणी के बाल कार्य-क्रमों ने इस दिशा में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आकाशवाणी के बाल कार्य-क्रम एक बाल मेला

का रूप धारण कर गए हैं। देश के हर भाग में जहां भी आकाशवाणी केन्द्र हैं, वहां सप्ताह में कम से कम एक बार यह मेला अवश्य जुड़ता है। आकाशवाणी छुट पुट रूप में नहीं अपितु क्रमबद्ध और योजना बद्ध रुप में बच्चों के लिए निरन्तर मनोरंजन की सामग्री जुटाती रहती है। बच्चा अब रेडियो से कुछ वैसी आशा रखता है जैसे कि वह उसका कोई सगा हो। रेडियो में उसे अपने प्यारे भैया और दीदी दिखाई देते हैं। इस प्रकार बाल श्रोता और आकाशवाणी में ये सम्बन्ध यांत्रिक नहीं मानवीय हो गए हैं। यही बात है जो कार्य-क्रम संयोजकों को निष्क्रिय और ठंडा नही होने देती।

बाजगीत सुनना और उसकी धुन को गुनगुनाना बच्चे को प्रिय लगता है। उसके लिए आकाशवाणी के बाल कार्य-क्रमों में प्रसारण के लिए जो गीत लिखे या लिखवाए जाते हैं उनमें इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है गीत के शब्द सरल और मुंह पर चढ़ने वाले हों और कविता का रस तथा आकर्षण भी उनमें हो। कोई भी लेखक जो बच्चों के लिए लिखना एक मिशन मानता है। रेडियो अथवा टेलीविजन के लिए लिख सकता है और उसे लिखना ही चाहिए इन माध्यमों के द्वारा शब्द आवाज बन जाते हैं। सम्प्रेषण के इन माध्यमों द्वारा प्रसारित बाल कार्यक्रमों से बच्चे को और कुछ चाहे मिले या नहीं लेकिन सौंदर्य बोध को बच्चे की उपलब्धियों में मुख्य स्थान मिलना ही चाहिए।

(क्रमशः)

–विद्या शर्मा
(कार्य-क्रम तथा प्रदर्शनी सहायक)

●★●

बाबा गणेशसिंह वेदी कृत चमत्कार चिन्तामणि

—डा० मनोहर लाल

बाबा गणेशसिंह वेदी हिमाचल प्रदेश की पुरानी रियासत कहलूर (जिला बिलासपुर) के महाराजा हीराचन्द (सं० १९०७ वि०–सं० १९४० वि०), महाराजा अमरचन्द तथा महाराजा विजयचन्द (सं० १९४५ वि०–सं० १९८४) के दरबारी कवि थे। उन्होंने सं० १९१० वि० में बिलासपुर राजदरबार में प्रवेश पाया था। भाषा विभाग पटियाला के ग्रन्थागार में सुरक्षित उनके 'श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिका ग्रंथ' के आधार पर सं० १९५४ वि० पर्यन्त कवि का जीवित होना अनुमानित होगा।

कवि गणेश सिंह द्वारा परिमार्जित ब्रजभाषा में लिखित 'शशिवंश विनोद', 'श्रृंगारशतक', 'चमत्कार चिन्तामणि', 'श्री गुरुनानक सूरजोदय जन्मसाखी', 'श्री कृष्णचन्द्र चन्द्रिका' तथा विक्रम-विलास' ग्रन्थ उपलब्ध हैं। वे श्री गुरुनानक देव जी के वंशज थे। उन्होंने 'श्री गुरु नानक सूरजोदय-जन्मसाखी' में अपने पिता का नाम गण्डासिंह तथा अपने पुत्रों के नाम गजेन्द्रसिंह तथा मतंगसिंह बताए हैं। उन्होंने कवि रूप में सबसे पहले आनन्दपुर दरबार में प्रवेश किया था। कवि का कुल तथा आत्म परिचय अधोलिखित छंदों में स्पष्ट है :—

(छप्पय) :

"गुरु नानक–सुत श्रीचंद लखमी सु चंद गन।
लखमी चंद के धरम चंद तिह मानक ससि भन॥
ताहि दतार मयंक ताहि तारा ससि जानो।
दुनी चंद के राम कौर तिह अरजन मानों॥
गुरुद हरिदास ता के भए, तिह श्री गंडा सिंह बर।
पुनि तिह सुत कवि गणेशसिंह नमो सबनि कर जोर कर॥

दोहरा :

करामात के धनी सब वेदी कुल मति चारू।
ग्रंथ बढ़न ते नहिं भने गुन गन ताहि अपारू॥
तीन सहोदर और मम सुनो नाम तिन केर।
हरी सिंघ अरु शकति सिंघ श्माम सिंघ लघु हेर॥
कवि गृह प्रथम अनंदपुर, अब बिलासपुर वास।
सिंह गजेन्द्र मतंग सिंह दोइ तनुज सुख रास॥

—श्री गुरुनानक सूरजोदय जन्मसाखी, प्रथम मयूष

संवत् १९१७ वि० में रचित 'चमत्कार चिन्तामणि' ज्योतिष का ग्रन्थ है। कवि को ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने जातक भावस्थ फल का छोटे से छन्द दोहे में मार्मिक वर्णन

किया है । ज्योतिष की कसौटी पर यह ग्रन्थ कितना सटीक उतरता है, जिज्ञासु पाठकों को इस निमित्त तथा हिमाचल प्रदेश के अज्ञात प्राय: कवि के एक ग्रन्थ को सामने लाने के उद्देश्य से यही ग्रन्थ नीचे दिया जा रहा है । यह दुर्लभ ग्रन्थ श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, शान्ति निकेतन नई दिल्ली के भूतपूर्व रीडर एवं अध्यक्ष कवि शिरोमणि पं० अमीरचन्द शास्त्री जी के सौजन्य से प्राप्त हुआ है । उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूं ।

इस ग्रन्थ की भाषा सरल है । दोहा जैसे छन्द में कवि ने ग्रह विशेष के लक्षण तथा फलित भाव को सहज रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया है । साहित्यिक दृष्टि से भले ही इस ग्रन्थ का अधिक महत्व न हो किन्तु ज्योतिष तथा हिमाचल प्रदेश में रचित ब्रजभाषा काव्य के ऐतिहासिक मूल्यांकन की दृष्टि से इस ग्रन्थ का अपना महत्व है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता ।

ॐ श्री गणेशाय नमः ॥ अथ चमतकार चितामणि भाषा लिख्यते ॥

कृत कवि वेदी गणेश सिंह जी ॥

दोहा : कवि गनेस हर बंदना, श्री गनेश पद ठान ।
चमतकार चितामनी, भाषा करत वषान ॥१॥

दो० : अंबर बिमल हिमस सुख हंस बंस सुखदाइ ।
रचौं जथामति ग्रंथ शुभ, सारद सरद मनाइ ॥२॥

गुरोपमा

शेष असेस न लहि सकं, निगम न पावत पार ।
श्री गुर नानक पद्म पद, बंदौं वारंबार ।।३॥

अथ लग्न में सूर्य फल ॥

दो० तिय कलेस घर भ्रमन बहु, बात पित्त तन तास ।
होहि हास कर जीवका, परे लग्न रवि जास ॥४॥

द्वितीय रवि भागवंत धन खरच शुभ, कुल सों करे कलेस ।
लाभ चतुष्य दत्ते घनो, दुतिये परे दिनेश ॥५॥

तृतीये मधुर वचन पौरष महा, दारघे तन अभिराम ।
तिरथादी रति दुमन जित, प्रबल प्रतापी मान ॥६॥

पुनः उदर पीर कुल मैं कलहि, पुराय प्रेम गुन गेह ।
कवि 'संभजहर' तीसरे, दिन मनि फल लख लेह ॥७॥

चतुर्थे तन अरोग कुल सों कलहि, अरि जीतक गुन षान ।
बहु मारग कर तासु ह्वं, परे जु चौथे भान ॥८॥

पंचम मति कुसाग्र संतान दुख, रतिये रति तन रोग ।
धन संची विद्या निपुन, पंचम सवता जोग ॥९॥

षटे रवि	बहु अरि हर पुन नृप कृपा, सखा बंधु सुख नाहि । लाभ बाजि गज मातु दुख, षष्टम रवि फल आहि ॥१०॥
सप्तमे	तेजवंत तिय सों कलहि, अल्प बनज ते सूष । तनक नींद तन पीर ह्वै, सप्तम सहस मयूष ॥११॥
अष्टम	दुख भांजन तस्कर मती, रति विदेस दुख दान । घर मैं रहेत चोरी भै, अष्टम रवि फल मान ॥१२॥
नौमे रवि	चित्त चिंता अति नीच मति, हरि सिमरन सुख नाहि । भ्रात विरोधी ताप तन, नौम सूर फल आहि ॥१३॥
दशम	सरब काज सिध लाभ छित, राज सभा सनमान । दिज करमी निज नारि रति दशम रवि फल मान ॥१४॥
एकादश	लाभ होइ नृप ते घनो, रिप घातक कवित्तवान । संतत दुख सद ही रहै, परे एकादश भान ॥१५॥
द्वादश रवि	नैन रोग रन में विजै तन दुबरो मग हीन । कवि संभजहर' द्वादशे श्री दिनमनि फल चीन ॥१६॥

"इति रवि"

"अथ शशि फलं"

भुजंग छंद	शशी आदि गेहे वपं पीन जानो । बलंवीर जो वीर तांको वषानो ॥ नफा वै लगो कूकटत्ते सु होई । भवे मेष राशी मतीवंत जोई ॥१७॥
द्वितीयो	परै चंद दूजै महीपाल होई । निज तीय ताई वसी क्रित जोई ॥ अटे दूर देशं महामोदकारी । सषा बंधु सेती सदा प्रीत पारी ॥१८॥
तीजै	परै जो ससी तीसरे भौन माहीं । नफा होहि सोदागरी ते घना ही ॥ सुखं सूखमं नारि औ बंध केरा । तपी वेषदाता बने काहु वेरा ॥१९॥
चतुर्थे	परै भौन चौथे विषै जो निसेसा । फलं तास को जान लीजे असेसा ॥ भवै मीत बंधून को मोद ताही । पुना पूत ना औ तीय को सूख ताही ॥२०॥
पंचमे	परै जो शशि पंच मै गेह माही । महा पूत नातीन को सूष ताही ॥ भवै भूम लाभ पुना भ्रात हेता । मतीवंत जानो तिसे चार चेता ॥२१॥
षष्टमे	छठे गेह मै जो परै सिंधु पूता । पृथीपाल होहि ताको कुसूता ॥ रणं भै भवै राज औ सत्र केरा । परै आपदा ताहि को बेर बेरा ॥२२॥
सप्तमे	करे सात मै जो निसा ईस बासा । सुष तीय केरा रिप त्रास तासा ॥ मग भै अघी पुन करता न होई । वपं बुद्धि वित्तं बलं छीन जोई ॥२३॥
अष्टमे	निसा ईस को आठ मैं वास जोई । दुषी दुबरो नैन नींद न होई ॥ पढे वेद विद्या भषे कथ नित्तं । रहे व्याधि भै संकट नास चित्तं ॥२४॥

नवमे करै वास नौमै सु या वास आई । जस जोनि ताकी छिए तंमाहि छाई ॥
भवें भागवंता गजं वाज सानी । विज दीन सेवी दुखं दोष हानी ॥२५॥

दशमे परै जो दशं में निशा ईस जाके । सखा बंध साहोवरं सूष ताकै ॥
नृपों की कृपा हो लहै मोद भारी । भल्यों साथ प्रीति शुभं काज कारी ॥२६॥

एकादशे शशी भौन एकादशे वास होई । महा पुजवंता जगं तास जोई ॥
नृपों की सभा मैं सदा मान पावै । चितं चारशीली भली भांत पावै ॥२७॥

द्वादशे शशि शशी द्वादशे भौन मैं लेई वासा । करं है कछु चित्त मे शत्रु त्रासा ॥
पिता मात सेवी शुभं काज जोवैं । महामोदकारी षितं ख्यात होवै ॥२८॥

॥ इति शशि फलं ॥

॥ अथ लग्न में मंगल फलं ॥

परै भौम जो आदि ही गेह माही । भवै पावकं लोहु को त्रास ताही ।
तपै माथ ताको रहे कुष पीरा । मरे तीय तांकी टरे सुख धीरा ॥२९॥

दूसरा भवै दूसरे भूम की पूत जोई । कपी लौं भषैं भष की जान सोई ।
महा वाकचाली वृथा वादकारी । फलं अंस भाष्यौ भली धाविचारी ॥३०॥

तृतीये परै भौम जो तीसरे भौन माही । महा पौरषी औं बली जान ताही ।
सखी सूर वीरं तपं तेज धारी । भवै जीवका हास ते मोदकारी ॥३१॥

चतुर्थे परै गेह चौथे धरा पूत जाको । सखा बंध संतान की सूख जांको ।
गजं वाज लाभं नृपं से वषानो । धनं आधराधै न चौरादि जानो ॥३२॥

पंचमे करै जो कुजं पंचमे गेह वासा । महा भूष जागै वपं बाल तासा ॥
उदै होत ही संतती मृत्यु होई । दूखी वीह दीनं सुतं हीन सोई ॥३३॥

षष्टम छटै छौनि छोना करे आन वासा । अभै उद्यमी धीर जी जान तासा ॥
वली वीर बांको विजै जंग जोई । मती मात पछं करें हान सोई ॥३४॥

सप्तमे परै सातमं सौर भीरु न जोई । उदै होत ही तां सुता मृत्यु होई ॥
यदा जीवती जोग को भेस धारै । छकी छोभ छुद्रा छिमा छोर डारैं ॥३५॥

अष्टमे (दोहा) लाभ धान ते अधिक ह्वै, रकत पित्त तन पीर ।
कवि 'संभजहर' अष्टमै, परै जु मंगल वीर ॥३६॥

नौमे तप जप विन लोभी अघी, तीरथ व्रत कर हीन ।
बहु भ्राता मति हीन कृश, नौम भौम फल चीन ॥३७॥

दशम संतत जुत दाता जसी, नृप निकटी बलवान ।
भागवंत विन रोग तन, दशम भौम फल मान ॥३८॥

एकादश अति नाशक अति तेज जुत, बंदनीय वितवंत ।
नरन माहि सो शत्र सम, जभ ग्यारमैं परंत ॥३९॥

द्वादश — बहु वित्त जुत भोगी महा, मद पानी पुन होइ।
मरे समर में शस्त्र कर, द्वादश जूझ फल जोई ।।४०।।

।। इति द्वादश कुज फलं ।।

।। अथ बुध लग्न फलम् ।।

तन दुवरो दिप कनक वत, जसी वैद्य वित्त वंत।
निज रुज हत ह्वै जतन ते, शशि सुत लगन परंत ।।४१।।

द्वितीये — धनी गुनी मानी जसी, सखी तेज जुत ओइ।
सुखी शील संतोष बहु, दुजीये बुध फल होइ ।।४२।।

तृतीये — मात पिता सेवी सदा, बनज प्रीत जिय जान।
लघु भ्राता तिह सिथल ह्वै, तृतीये बुध फलमान ।।४३।।

चतुर्थे — सुमतिवंत विद्या निपुन, राज वंस अधिकार।
राग तान मैं चतुर अति, चतुरथ बुध फल चार ।।४४।।

पंचम — वेश्या रति चलमति गुनी, कंचन आदि पछान।
लखे चिह्न नर तियन के, पंचम बुध फलमान ।।४५।।

षष्टम — रव विरोधी संयमी, करै ग्यान उपदेश।
वपु में वाय विकार ह्वै, षष्ट बुध फल अैस ।।४६।।

सप्तम — अलप दरब वल सुमति जुत्त, तिय सुख संजुत जोई।
दीप कांति तन रसक अति, सप्तम शशि सुत होई ।।४७।।

अष्टम — उमर साल सतु तनु सजी, नृप दंड सुत हीन।
दूर जीवका भ्रात दुख, अष्टम बुध फल चीन ।।४८।।

नवम — धरम शील तीरथ रति, छितपति दुख बिन देहि।
गुनी गवैया तेज रवि, नौमे बुध फल एहि ।।४९।।

दशम — तेज सूर सुख सजन गन नृप निकटी बलवान।
कवि 'संभजहर' दशम घर श्री ससि सुत फल मान ।।५०।।

एकादश — फरज फराकत मौज मन, धरा थरब को देइ।
अवनीस रहै ग्यारमैं, जोग्य वास करेइ ।।५१।।

द्वादशे — भोजन देय न द्विजन को, नहि जननी सुख ताहि।
मीतन सों कल ही सदा, द्वादश बुध फल आहि ।।५२।।

।। इति बुध फलं ।।

। अथ वृहसपति लग्न फलं ।।

गुनी सुवेखी तिय हितू, सुखी चिंता चित नाहि।
वृथा खरच नहि पीन वपु, लगन गुरु फल आहि ।।५३।।

द्वितीये
सुखी धनी शशि कांत तन, नृप निकटी बलवान ।
कुल सवता कविता रचे, दुतिये गुरु फल जान ॥५४॥

तृतीये
सखा अनुज सुख तन अरु, जस पौरष जुत जोइ ।
लाभ नृपत घर ते घनो, तृतीये गुर फल होइ ॥५५॥

चतुरथे
वेद घोष निरघोष है, सदा रहै घर माहि ।
गज वाजन कर षरच बहु, चतुरथ फल गुरु याहि ॥५६॥

पंचमे
चित्रकार लेखक गुनी जल, भै अरि हर होइ ।
करे उपद्रव रीत को, पंचम गुरु फल होइ ॥५७॥

षष्टमें
जनमत हो जननी रिपु, डर कर रुज देह ।
सिद्ध न ह्वै मन कामना, षष्टम गुरु फल येह ॥५८॥

सप्तमे
धनी सुमति बहु तियन हित, शस्त्र पान पुन होइ ।
बहु भागी निज देश में, सपतम गुरु फल जोइ ॥५९॥

अष्टमे
विलग मात पित ते रहै, तन अरोग धन हीन ।
जड़मति अंत विकुंठ गति, अष्टम गुरु फल चीन ॥६०॥

नवमे
गुर पित मितन को हितू, तीरथ हरि पद प्रीत ।
नृप धरमी दानी जसी, नौमे गुरु फल रीत ॥६१॥

दशमे
चित्रसाल ऊंची अटा, तुंग ध्वजा फहराइ ।
अज मति जुत नर होय सो, दसमें गुरु फल गाइ ॥६२॥

एकादशे
वंदनीय मुनि सुमति जुत, तिय सुत सुख सुर ज्ञान ।
कंचनादि बहु माम ह्वै, ग्यारस गुरु फल जान ॥६३॥

द्वादश
जस जिय मोहन मृदल वच दरब षरच बहु होइ ।
कवि 'संभजहर' द्वादशे, श्री गुरु फल इम जोइ ॥६४॥

॥इति गुरु फलं ॥

॥ अथ लग्न में शुक्र फलं ॥

लाज करम सभ भाव ह्वै, बुधिवंतन सों नेहु ।
बहु भामनि भोगी भवै, लगन भृगुज फल एहु ॥६५॥

द्वितीये
कुलमामी उज्जल मती, बिमल वसन मृदु वाक ।
वंदनीय बहु नृपन कर, दुतीये भृगु विवाक ॥६६॥

तृतीये
निज तिय हित सुत बंधु सुख, कुल में नृप सम होइ ।
समर भीर मति जानिये, तृतीये कवि फल जोइ ॥६७॥

चतुर्थे	पूजनीय जग दरब जुत, नित प्रसंन सुख तास । कवि 'संभजहर' चतुरथे, करै जो भृगु सुत्त वास ।।६८।।
पंचमे	मीतन मधुर अहार दै, शुभ संतत कविराज । कवि 'संभजहर' पंथ में, परै जु श्री कविराज ।।६९।।
षष्टम शुक्र	वित बिन बहु रिप अलाप मृत, निज मातल दुख दाइ । परै खरच में शुक्र जों, ताको फल इम गाइ ।।७०।।
सप्तमे	सुखी तीय बहु बंधु जुत, रतन थान जग जोइ । कवि 'संभजहर' सप्तमै, भृगु सुत्त फल होइ ।।७१।।
अष्टमे	छुद्रन सों झगरो सदा, दुष्ट चित्त न रोग । नीच मती कुल सौं कलहि, अष्टम भृगु सुत्त जोग ।।७२।।
नवमे	सुख संपत जुत कुल प्रभू, भ्रात बंधु सुख दाइ । नित प्रसंन सुख दया जुत, नवमै कवि फल गाइ ।।७३।।
दशम	निज कुल प्रभ बहुर तन' जुत वाक चाल जगतीत । कवि 'संभजहर' दशम घर, भृगु सुत फल इह रीत ।।७४।।
एकादशे	संतन सुखद विसाल मति, रूप तेज जुत जोइ । भुजबल विक्रम लाभ छित, शुक्र इकादश होइ ।।७५।।
द्वादशे शुक्र	वड़ प्रताप वपु विमल वरु, मिश्रत कर्म कमाइ । घनो लाभ धन कों करै, द्वादश कवि फल गाइ ।।७६।।

।। इति शुक्र फलं ।।

।। अथ लग्न शनि फलं ।।

	रोग क्रोध जुत नीच मति, क्रूर कुशील कुजात । अधुन अचेत कुरूप खल, लगन शनी इह भांत ।।७७।।
द्वितीये	सषा बंधु सुख विन सदा, दरब हीन पुन होइ । तेज बढ़ै खल करम कर, दुतिये शनि फल जोइ ।।७८।।
तृतीये	सुमति तेज पौरष महा, खल सुभाव धन हीन । कृपन क्रूर भ्रातन दुखद, तृतीये शनि फल चीन ।।७९।।
चतुर्थे	अंग भंग ह्वै अगनि कर, अनुज तनज सुख हानि । सरब रिपन को नाश ह्वै, चतुरथ शनी फल आहि ।।८०।।
पंचमे	तन रुज जुत सुत तन ते, लाभ खरच बहु होइ । तीरथ रति विनत तरक, मति पंचम शनि फल जोइ ।।८१।।
षष्टे	सरब काज सिध पौरषी, परन पराजै दैन । मातुल दुख दायक सदा, षष्टम शनि फल अैन ।।८२।।

सप्तम	तीय सुत सुख नहि कूछ, तन गुदा पीर कुल रार । अंग भंग रुज बात कर, सपतम शनी विचार ॥८३॥
अष्टम	सुत संपति को छय करै, तन रुज अपमृत होइ । कवि 'संभजहर' अष्टमैं, सूरज सुत फल जोइ ॥८४॥
नवमे	संत विरोधी मलन बपु, सुपच प्रीत दुरचार । तन अरोग तिय सोग चित, नौम शनी फलकार ॥८५॥
दशमे	पित सेवी पित पछहत, दरब खरच बहु जान । धन पैंदा शुभ करम कर, दशम शनी फल मान ॥८६॥
एकादशे	सुत लाभ नृप गेह ते, चतुर सुसंगी सोइ । संतत अति रोगी रहै, रवि सुत ग्रारस जोइ ॥८७॥
द्वादशे शनि	नृप द्विज चोरन को रिपू, दृग दूष काम विहीन । मात विनास कसीस दुख, द्वादश निफल चीन ॥८८॥

॥ इति शनि फलं ॥

॥ अथ लग्न राहु फलं ॥

	घात छीन तन कूबरो, कम उदार निश अंध । संतत सुख कम कुल कलहि, लग्न राहू फल संध ॥८९॥
द्वितीये	अघुन अलाज नरेस दुरबल, सन वाम दिश होइ । रकत दोष मुख अधिक ह्वै, राहु दूसरो जोइ ॥९०॥
तृतीये	भ्रात बंधु सुख अलप ह्वै, रोग ताप कछु देइ । नृप ते ह्वै सनमानहु, राहु तीसरे थेइ ॥९१॥
चतुथ	तन बिमार नृप सों कलहि, मात पिता दुखदाइ । कवि 'संभजहर' चतुरथे, दैंत राज फल गाइ ॥९२॥
पंचमे	तन दीरघ मेचक महा, वाय कोप हिय होइ । उदर पीर जुत अलप सुख, राहु पंचमे जोइ ॥९३॥
षष्टमे	तन सुख अरि हर विदत जग, तेज नृपत सम ताहि । कवि 'संभजहर' मात सुख, राहु षष्टमे जाहि ॥९४॥
सप्तमे	मति अचेत तिय बिन दुखी, तन बिमार बिन लाज । मरे कुमारग में कहु, सपतम फल तमराज ॥९५॥
अष्टमे	धन हानी नृप सों कलहि, कट वच पल चर जोइ । गुदा रोग कर तन तजै, अष्टम राहु जु होइ ॥९६॥
नवमे	नहि हर गुर तीरथ रती, धरम करम कर हीन । बैर भाव सभ सों करैं, नौम सोम रिप चीन ॥९७॥

दशम — जग में नृप सम मात जुष, पित को अति दुखदाइ ।
बिदत तेज बहु अवनि मैं, परै दशम तमु राइ ॥९८॥

एकादशे — गुरु तीरथ रति रनु अभै, सुमति खरच शुभ हेत ।
नीच करम कर लाभ घनु, राहु एकादश देत ।९९॥

द्वादशे राहु — श्रवन दृगन मैं पीर अति खूब खरच धन जोइ ।
वर्फ होहि दुरजन सबै, द्वादस राहु जु होइ ॥१००॥

॥ इति राहु फलं ॥

॥ अथ केतु लग्न फलं ॥

अति कलेश तिय चित्त, चित्त तन रुज वाय विकार ।
परे लग्न में केत जो, ताको फल निरधार ॥१०१॥

द्वितीये — चित चिंता पुन भूप भै, सत बादी मुख रोग ।
कवि 'संभजहर' दूसरे, परै दैत्यपति जोग ॥१०२॥

तृतीये — दुरजन दाहक दर्व जुत बकवादी बुधि हीन ।
भुज पीरा हिय होल ह्वै, तृतीये धुज फल चीन ॥१०३॥

चतुर्थे — अन जहान सनमान नहि, तात मात दुखदान ।
क्रूर कलेसी कुटल मति, चतुर्थ धुज फल मान ॥१०४॥

पंचमे — सुत संतत कम सुमति अति, बात पित रुज होइ ।
दरब लाभ ह्वै देर सौं, पंचम केतु जु होइ ॥१०५॥

षष्टम — रिप विनाश वपु व्याधि बिनु, चौपद सुष कम जान ।
मान हान मातल करे, षष्टम धुज फल मान ॥१०६॥

सप्तम — चलैं वाट बहु वार भै बाल विरहि बित हीन ।
कवि 'संभजहर' धर्म विन सप्तम धुज फल चीन ॥१०७॥

अष्टम — कर कंकन का लग्न भव, अष्टम धुज व राहु ।
बहु वित्त ब्रीड वाद जुत, गुदा पीर अवगाहि ॥१०८॥

नवमे — भ्रात बैर भुज रुज अघी, जमन जात जर देत ।
वृद्धि दान तप हास ते, नौमैं परे जु केत ॥१०९॥

दशमे — दुखद मात पित आलसी, है गैरथ जुत जानु ।
हिय जानहू पीरा रहै, दशम केत फल मान ॥११०॥

एकादशे — सुमति सुभाव सरूप जुत, सित पर सज्जन नेहु ।
खल संतत उर पीर ह्वै, ग्यारस धुज फल एहु ॥१११॥

द्वादशे केतु गुदा कान दृग दुख रहै, खरच अधिक पित हानि ।
मातल पछी लाज बिन, द्वादस धुज फल मान ॥११२॥

॥ इति केतु फलं ॥

॥ अथ संवत तथा नृप नाम वर्ननं ॥

सवैया संवत राग रसा निध अवनी कातक मावस कुज दिन माहि ।
कीन जथा मति ग्रन्थ समापति नाम गनेस सिंह कवि ताहि ॥
पुर बिलास पति नीत निपुन नृप हीराचंद तेज रवि जाहि ।
खल उलूक गन दवत जास लख सषा सरोंज सरव बिकसाहि ॥११३॥

दोहा तिह नृप सासन ते करी, भाषा सुगम विचार ।
चमतकार चिंतामनी, नाम ग्रंथ निरधार ॥११४॥

इति श्रीमति चमतकार चिंतामनी भाषा कृत कवि वेदी संभज मृगिंद नाम ग्रंथ समापतं शुभम् ॥ श्री राधा कृष्णाय नमः ॥ श्री राधा जी संवत् ॥ १६३२ ॥ भाद्रपक्ष ॥ प्रबिष्टे ॥ ३२ ॥ चंद्र वासरे ॥ चतुर्थयां तिथौ ॥ लिखितं पुस्तकं ॥ शुभम् ॥ भूयात् ॥ लेखक पाठक यो शुभम् ॥

(मूल गुटके के ७$\frac{१}{२}$"×४$\frac{१}{२}$", १७ पतरे, पृष्ठ ३४
प्रति पृष्ठ ८ पंक्तियां, लगभग २० अक्षर
छंद संख्या—काली स्याही में यथा छंद ११४, दोनों ओर खड़ी रेखाए लाल स्याही में
ग्रह संख्या—लाल स्याही में
लिखावट साफ सुथरी, दोनों ओर हाशिया, लाल दोहरा डोरा
लिखित अंश ५·२"×२·७"

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
श्रीराम कालेज ऑफ कॉमर्स,
दिल्ली–७ ।

लोक नाट्य एवं नृत्य कार्यशाला का प्रायोजन

हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा आकादमी की दो योजनाओं लोक नाट्य कार्यशाला एवं लोक नृत्य समिष्टी को इकट्ठा कर लोक नाट्य एवं नृत्य कार्यशाला का आयोजन चम्बा में दिनांक १९ नवम्बर १९७९ से ३ दिसम्बर १९७९ तक हुआ। इस कार्यशाला में प्रदेश के हर जिले से दो-दो कलाकार बुलाए गए, जिनमें से एक महिला कलाकार और एक पुरुष कलाकार थे। गायक व वादक चम्बा के ही लिए गए। कुछ जिलों से कलाकार कार्यशाला में नहीं पहुंच पाए इसलिए बाकि कलाकार चम्बा से ही एकत्र कर लिए गए। जिन जिलों से कलाकार आए उन जिलों के नाम कुल्लू, मण्डी, शिमला, हमीरपुर, ऊना, कांगड़ा एवं चम्बा है। इन सभी जिलों से 30 कलाकार, जिनमें अभिनय, नृत्य, गायन व वादन से सम्बन्धित सभी प्रकार के कलाकार थे, एकत्र हुए।

१९ नवम्बर, १९७९ को दोपहर दो बजे लोक नाट्य एवं नृत्य कार्यशाला का आगमन समारोह हुआ। श्री शिवकुमार उपमन्यु, माननीय मन्त्री, हिमाचल प्रदेश एवं अध्यक्ष हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी, ने समारोह की अध्यक्षता की। कलाकारों के अलावा अन्य अतिथियों ने भी इस आगमन समारोह में भाग लिया। कार्यशाला में भाग लेने के लिए आए कलाकारों द्वारा इस आयोजन समारोह में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया।

सचिव अकादमी ने कलाकारों व अन्य अतिथियों को अकादमी की गतिविधियों और योजनाओं के बारे में अवगत करवाया एवं कलाकारों को आर्शीवाद दिया। श्री शिवकुमार उपमन्यु, माननीय मन्त्री हिमाचल प्रदेश, ने कलाकारों को आशीर्वाद देते हुए अपने भाषण में कहा कि हिमाचल प्रदेश बर्फ के आंचल पर बसा प्रदेश है। जिसका मानक हम गौड शिव को मानते हैं। शिव एक बेहतरीन एक्टर, एक बेहतरीन डांसर आज के युग में भी हम मानते हैं। अतः हिमाचल प्रदेश की धरती में जो भी व्यक्ति पैदा हुआ उसका सम्बन्ध कला से कुछ न कुछ अवश्यमय रहेगा।

चम्बा जिला ही नहीं बल्कि हिमाचल प्रदेश का हर जिला कला की दृष्टि में खास महत्व रखता है। श्री उपमन्यु जी ने कहा जिस तरह हर जिले से खिलाड़ियों का चयन कर एक टीम की सूरत में उन्हें खेलने को भेजा जाता है, उसी तरह हर जिले से कलाकारों का चयन कर हिमाचल प्रदेश का एक सांस्कृतिक दल, सांस्कृतिक कार्य-क्रम प्रस्तुत करने के लिए तैयार किया जाए। इस तरह कलाकारों को प्रोत्साहन एवं अवसर मिलेगा। हिमाचल प्रदेश भिन्न-भिन्न जिलों में बंटा है। इन १२ जिलों के कलाकार एकत्र रहेंगे तो इनमें भावात्मक एकता रहेगी, इस एकता का प्रचार होगा और यह एकता दूर-दूर तक फैलेगी। इसलिए हम इस लोक नाट्य एवं नृत्य कार्यशाला के लिए एकत्र हुए हैं।

अन्य दिनों के कार्य-क्रम का मूल रूप से तीन भागों में विभाजन किया गया। वह निम्न प्रकार से है :—

१. नाट्य एवं नृत्य के विषयों पर प्रतिपादक और विचार विमर्श : प्रातः १० बजे से दोपहर १२ बजे तक।

२. प्रदेश के प्रमुख जिलों के लोक नृत्यों का व्यावहारिक प्रशिक्षण : दोपहर २ बजे से सायं ५ बजे तक।

३. लोक नाटक "सूही माता—चम्बयाली रानी" का अभ्यास व मंचन सायं ७ बजे से रात्रि १० बजे तक।

प्रातः १० बजे से दोपहर १२ बजे तक के कार्य-क्रम के लिए जो विशेषज्ञ आए और जिन्होंने भाषण-प्रशिक्षण दिया वह निम्न प्रकार से है।—

	विशेषज्ञ का नाम	विषय
१.	श्री हरिराम जस्टा	हिमाचल प्रदेश के लोक नृत्य
२.	श्री अशोक हंस	अभिनय कला
३.	श्री रामदयाल नीरज	हिमाचल प्रदेश के अलग-अलग वाद्ययन्त्र
४.	श्री हरीशचन्द्र राय	लोक रंगमंच—सामाजिक प्रचलन
५.	श्री विश्वचन्द्र ओहरी	मुखौटे
६.	श्री सी० एस० पंवार	हिमाचल प्रदेश में सांस्कृतिक तथा लोक मंचीय गति—विधियों का विकास।

सुविधानुसार कभी दोपहर को व कभी सायं को नाटक व नृत्य का अभ्यास होता रहा।

नृत्य विशेषज्ञों में से श्री बलदेव राज शर्मा ने पांच दिन तक कुल्लू जिला के नृत्य, श्री विद्यानन्द सरैक ने तीन दिन तक सिरमौर जिला के नृत्य और श्री रमेश भारद्वाज ने तीन दिन तक चम्बा जिला के नृत्य कलाकारों को सिखलाए।

चम्बा के स्कूल के बारह बच्चों को भी इसी कार्यशाला के दौरान कुल्लू और सिरमौर जिला के नृत्य सिखलाए गए।

चम्बा की लोक गाथा रानी सूही का बलिदान पर आधारित नाटक 'सूही माता—चम्बयाली रानी' का अभ्यास व मंचन हुआ। इस नाटक की रूप रेखा श्री अशोक हंस और श्री खेमराज गुप्त ने तैयार की। नाटक का आलेख श्री खेमराज गुप्त ने लिखा। नाटक का निर्देशन श्री अशोक हंस ने दिया। कार्यशाला में आए सभी कलाकारों ने इस नाटक में भाग लिया।

लोक नाटक 'सूही माता—चम्बयाली रानी' का अभ्यास व मंचन कार्यशाला का मुख्य भाग रहा। रानी सूही के बलिदान पर आधारित यह कथा दो या तीन पेज की है जिसका अकादमी द्वारा लगभग पौने दो घण्टे का नाटक तैयार किया गया। यह कथा तब की है जब भरमौर के राजा साहिल वर्मन ने आस पास के छोटे-छोटे राणाओं को जीत चम्बा को अपनी राजधानी बनाया। नाटक का आरम्भ भी ऐसे ही दिखाया है कि चम्बा कैसे और क्यों बना। रानी सूही के बलिदान

की कहानी काफी महत्वपूर्ण है और इसके इर्द-गिर्द ही चम्बा के निर्माण की कहानी सामने आती है। जिन दिनों चम्बा में लोग बसने लगे, उन दिनों नगर में पीने के पानी की कमी थी। लोग दूर-दूर से पीने का पानी लाते थे। राजा व प्रजा परेशान थी। तभी एक रात राजा साहिल वर्मन की रानी नयना देवी जो आजकल सूही माता व देवी के नाम से प्रसिद्ध है और जिसका चम्बा में मन्दिर भी है, को स्वप्न आया जिसमें कूल्ह की देवी ने राज दरबार में से राजा, राजपुत्र व रानी की बलि देने को कहा। इस तरह रानी ने प्रजा के लिए तथा शहर में पानी लाने के लिए अपना जीवित बलिदान दिया। रानी ने स्वयं को जीवित चुनवाया।

इस महान औरत के बलिदान पर आधारित नाटक में गीत सभी चम्बा के ही रखे गए हैं। यह नाटक चम्बा के महत्वपूर्ण दो लोक गीतों से आरम्भ होता है जो कि भगवान शिव की बन्दना के बारे में हैं। अतः चम्बा के ही पन्द्रह लोक गीत इस नाटक में हैं व एक गीत नाटक की आवश्यकता को देखते हुए शिव पूजा को लेकर नया लिखा है और वह भी पहाड़ी राग पर गाया गया हैं, लोक नृत्य भी इस नाटक में है। तीन पूर्ण लोक नृत्य इस नाटक में दिखलाए गए हैं। इसके अलावा शादी का दस मिनट का दृष्य लोक गीतों व लोक नृत्यों पर आधारित है। सूही माता को चुनवाने का दृष्य भी लोक गीत व लोक नृत्यों पर आधारित है। इसके अलावा सूही माता का मेला गीतों व नृत्यों पर आधारित है। जो गीत नया लिखा है, वह प्रार्थना गीत है जिसमें शहर के सभी नागरिक पानी के लिए प्रार्थना कर रहे हैं उनकी आशा को नर्तकी (क्योंकि औरत को हिन्दुस्तान फिलासफी द्वारा देवी का रूप माना है) द्वारा लोक नृत्य के रूप में दिखलाया है और इस लोक नृत्य में शिव की शारीरिक व हाथों की मुद्राओं का कलात्मक मिश्रण किया गया है। इस नाटक में लोक गीतों व नृत्यों को न केवल औपचारिक रखते हुए बल्कि इनका नाटकीयकरण कर कलात्मक रूप दिया गया है जो कि अकादमी का एक विशेष व महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इसके अलावा इस नाटक में जिला की संस्कृति का ध्यान भी रखा है। शादी के दृश्य में तेल डालने की प्रथा, दूल्हे को गालियां निकालने की प्रथा व दूल्हा और दूल्हन के पैर के अंगूठे से अंगूठा मिलाना व अन्य कई चीजें प्रदेश की संस्कृति को प्रस्तुत करती हैं। चम्बा में देवी को मूर्ति व पालकी में दिखलाया जाता है। इस तरह पालकी का प्रयोग कलात्मक रूप में पेश किया गया है, जबकि कूल्ह की देवी स्वप्न में रानी को दिखाई देती है। प्रदेश की अलग-अलग तहसीलों की वेश-भूषा को कलात्मक रूप से दर्शाया है। इसके अलावा नाटक को नाट्य कला की तकनीक व स्टाईल में प्रस्तुत किया गया है। मंच सज्जा को कलाकारों द्वारा कलात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। नाटक का रूप ट्रेजिक है परन्तु शादी का दृश्य दिखला कर दर्शकों को Comic relief भी दिया है। ट्रेजडी प्रस्तुत करने के बाद अन्त में ऐसा लोक गीत व नृत्य का चयन किया है कि लोक नाटक 'सूही माता–चम्बयाली रानी' रस प्रधान बना रहा है।

इस नाटक का मंचन ३ दिसम्बर, १९७९ को लोक नाट्य एवं नृत्य कार्यशाला के समापन समारोह पर चौगान मैदान चम्बा में किया। चम्बा के दर्शकों व आलोचकों ने इस नाटक की काफी सराहना की है।

श्री शिव कुमार उपमन्यु, माननीय मन्त्री हि॰प्र॰, इस समापन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में पधारे तथा श्री सरवन कुमार जी, भूतपूर्व स्वास्थ्य मन्त्री हिमाचल प्रदेश ने इस समारोह की अध्यक्षता की।

इस तरह इस लोक नाट्य एवं नृत्य कार्यशाला के दौरान हिमाचल प्रदेश का एक सांस्कृतिक दल तैयार किया गया जो लगभग पौने दो घंटे का एक पूरा नाटक प्रस्तुत कर सकता है व अलग-अलग जिलों के कलाकारों का यह दल प्रदेश के प्रमुख जिले चम्बा, सिरमौर और कुल्लू के नृत्य प्रदर्शित कर सकता है।

इस तरह हिमाचल कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी की योजना लोक नाट्य एवं नृत्य कार्यशाला का यह प्रयास काफी सफल रहा है। अकादमी आशा रखती है कि ऐसा सफल प्रयास हर साल किया जाएगा ताकि हिमाचल प्रदेश के कलाकारों को प्रोत्साहन एवं अवसर मिले और इन्हें दर्शकों के सामने लाया जा सके।

—अशोक हंस
संगीत-नाटक आयोजक,
अकादमी।

—:००:—

हमारे साहित्यकार–

स्वर्गीय श्री विजय कुमार पण्डित

—प्रेम कुमार शर्मा

हिमाचल प्रदेश को बने अभी थोड़े ही वर्ष हुए हैं, लेकिन इसे रूप आकार देने वाले क्षेत्र तो पहले भी थे। उस जमाने में, जबकि संचार साधन नगण्य थे, तब भी यहां से बाहर जाकर कुछ लोगों ने तालीम हासिल की है और नाम कमाया है। स्वर्गीय श्री विजय कुमार पण्डित भी इन्हीं लोगों में से थे।

रंगीन तबीयत के मालिक श्री विजय कुमार पण्डित, जो एक लम्बे अर्से तक नियमित रूप से आकाशवाणी शिमला से संबद्ध रहे और श्रोताओं के बीच "बाबू जी" के नाम से सुज्ञात थे, का जन्म १० मार्च १९०५ को शिमला शैलमालाओं के तारादेवी के समीप शंगीन गांव में हुआ था।

आपने दसवीं कक्षा तक शिमला में ही शिक्षा पाई। शिमला के आरम्भ से ही रंगमंच गतिविधियों का केन्द्र होने के कारण, पंडित जी भी इस ओर आकर्षित हुए। उन दिनों गैयटी थियेटर में नाटकों की धूम रहती थी। अनेक गैर पेशेवर नाट्य संस्थाएं उन दिनों सक्रिय थीं। जब पंडित जी आठवीं कक्षा के छात्र थे, तभी पहले-पहल आगा हश्र के नाटक "असीरे हिंस" में नौशाबा के अभिनय में रंगमंच पर उतरे। यह नाटक एडवर्ड ए०डी०सी० द्वारा प्रस्तुत किया गया था। उन दिनों संगीत नाटक का अभिन्न अंग होता था। इसलिए संगीत में भी इनकी रुचि होना आश्चर्य की बात न थी। इसके बाद संगीत और नाटक में आपकी दिलचस्पी उत्तरोतर बढ़ती ही गई।

स्वर्गीय श्री विजय कुमार पंडित ने महेन्द्रा कालेज, पटियाला से एफ०ए० करने के बाद एस०डी० कालेज लाहौर से १९३० में बी०ए० और फिर ओरियन्टल कालेज से एम०ओ०एल० की परीक्षा पास की। आप कालेज में ही थे जब वहां गोपाल कृष्ण मेहता निर्देशित मूकचित्र 'दुख्तरे-जमाना' में अभिनय किया, और वह भी नायक का, इस फिल्म में इनके साथ आज के ख्याति प्राप्त निर्देशक श्री ए०आर० कारदार और खलनायक श्री हीरालाल भी थे। आपकी दूसरी फिल्म थी 'सजीव मूर्ति' यह सवाक फिल्म बम्बई में बनी थी, जिसमें आपका नायक का रोल था।

इसके बाद पण्डित जी ने 'आज़ादी' में न केवल नायक का रोल अदा किया बल्कि इसकी कहानी भी लिखी और संगीत निर्देशन भी दिया। भवनानी प्रोडक्ट्स की 'शादी की रात' में नायक की भूमिका निभाने के बाद, १९३६ में आपको ख्यातनामा निर्देशक स्वर्गीय देवकी बोस कलकत्ता लिवा लाए, फिर इनके निर्देशन में ईस्ट ईण्डिया फिल्म कम्पनी की सुनहरा संसार में अभिनय किया और फिर देवकी बाबू के ही निर्देशन में न्यू-थियेटर्स की 'अभागिन' के नायक बने। 'अभागिन फिल्म में इनके साथ स्वर्गीय पृथ्वीराज कपूर भी थे इस फिल्म की फोटोग्राफी विमलराय ने की थी

तथा संगीत आ०सी० बोराल का था। उन दिनों की कलकत्ता की फिल्मों में—जिनमें 'हरिकीर्तन' और 'मेरी आशा' फिलमों के लिए आप ने गीत भी गाए। फिल्म 'सुनहरा ससार' में आपने गीत भी लिखे। अन्तिम फिल्म आपके फिल्मी जीवन का अन्तिम चरण बनी क्योंकि पिता जी की बिमारी के कारण आपको १६४० में घर आना पड़ा, सन् १६४७ में इनके पिता जी का देहान्त हो गया और फिर जमींदारी के पचड़ों में उलझ गये।

१६४८ से १६५४ तक आप सहकारी संस्थाओं के कार्यकलापों में जुड़े रहे। जून १६५५ में शिमला में आकाशवाणी का केन्द्र खुला और सितम्बर में आप इससे जुड़ गए जहां स्टाफ कलाकार के रूप में कार्य किया। लेखन किया और पहाड़ी गीत भी गाये।

जहां तक रेडियो से संबद्ध होने की बात है, कलकता प्रवास के दौरान भी आपने गीत गाये इतना ही नहीं मैगाफोन ग्रामोफोन कम्पनी के लिए भी गीत गाये। उन दिनों रिकार्ड के कवर पर आपकी फोटो छपती थी। जहां तक संगीत निर्देशन का उल्लेख है, उल्लेखनीय है कि पण्डित जी ने संगीत की शिक्षा पटियाला के हकीम चान्दनराम 'चरन' से प्राप्त की, बाद में लाहौर के विष्णु दिगम्बर महाविद्यालय में भी संगीत सीखा। इसके अतिरिक्त पण्डित दलीपचन्द्र बेदी तथा कलकता के भीष्मदेव चैटर्जी से संगीत शिक्षा प्राप्त की। प्रसिद्ध पार्श्व गायक तथा संगीत निर्देशक श्री एस० डी० वातिश 'आजादी' फिल्म में आपके साथ सहायक निर्देशक थे।

आपने कई नाटक, कविताएं तथा संगीत की पुस्तकें भी लिखीं। कुछ रचनाएं तो आपकी हिमाचल भाषा-अकादमी द्वारा प्रकाशित विभिन्न पुस्तकों में भी छपी हैं। आकाशवाणी से अवकाश ग्रहण करने के बाद भी आप आकाशवाणी के लिए 'ठगड़े रे बोल' प्रस्तुत करते रहे।

अन्त में थोड़ा बिमार रहने के बाद ४ नवम्बर १६७७ को ७४ वर्ष की आयु में पंडित जी का निधन उनके निवास स्थान पर हुआ।

संचालक
हिम त्रिवेणी कला संगम
शगीन (तारादेवी)

पुस्तक–समीक्षा

पुस्तक : 'श्यामला' (काव्य संग्रह) ।
सम्पादक : अनिल राकेशी ।
पृष्ठ संख्या : १५८ ।
मूल्य : पंद्रह रुपये ।
प्रकाशक : सचिव, कला - संस्कृति - भाषा अकादमी, परी महल, शिमला ।

श्यामला : मूल सामायिक प्रश्नों की गहराई ।

आधुनिक काव्य-यात्रा में हिमाचल का स्थान तलाशना, हिमाचल की सुन्दर शैल शृंखलाओं को पार करने के समान है। अनुकूल प्रोत्साहन न होने के कारण यहां बहुत ही कम काव्य-संग्रह प्रकाश में आ सके हैं। गत कुछ वर्षों से प्रयास में लगे प्रसिद्ध कवियों ने अपनी कविताओं को राष्ट्रीय धारा में जोड़ने हेतु 'श्यामला' काव्य संकलन संवारा है। विभिन्न परिस्थितियों, प्रतिकूल वातावरण में निकाला गया, यह 'काव्य-संग्रह सुन्दर रास्ता है।प्रस्तुत संग्रह में तेरह प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं को स्थान दिया गया है।

कविताएं आधुनिकता को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं। समाज की मूल समस्याओं को कवियों ने अपनी कविताओं में वाणी दी है। नीरसता और शुष्कता न बनी रहे, 'कुछ प्रेम और उपालम्भ' गीतों को कवियों ने स्वर दिया है।

मानव-नियति को चारों तरफ से दबाव, यन्त्रणा और प्रतिरोध ने ग्रस लिया है। राजनीति के रंग व्यक्ति को दब्बू और पंगु बना रहे हैं। जन-साधारण की समस्याओं को 'तिकड़मबाजी' भयानक स्थिति में ले जाना चाहती है। प्रतिकूल स्थिति में कवि धर्म—

"मानव नियति को
चूतड़ों के नीचे दबा कर
बैठ जाने वालों की
घिनौनी साजिश के खिलाफ
जेहाद बोलता हूं मैं,
मेरी कविता
इस जेहाद में मेरा हथियार है
इस लिए मुझे
तुम्हारे जलूस में
मसखरे की भूमिका अदा करने से
इनकार है।"

—'शुरुआत/अनिल राकेशी'

काव्य धर्म का दूसरा पहलू भी चूका नहीं है। यदि सर्जन व्यक्ति को सामने रख कर किया जाए तभी साहित्य का अर्थ निहित रहता है—

'होती जा रही हैं, निरर्थक
कहानियों की लयहीन
तथाकथित पेचीदगियां
कितना ही दिखाते रहें ये
अपना दुधमुंहापन,
पैदा करते रहें कितनी ही भ्रांतियां।' —'बनजारे/सत्येन्द्र शर्मा'

जनवादी स्वर में कवि कहता है—

'कदम विकास के
भटके हुए हैं
फुलवारी में
उगे हैं प्रश्न ही प्रश्न
जिन पर कोई तितली
नहीं बैठती।' —'प्रश्न ही प्रश्न/रामकृष्ण

कवि जन-चेतना का प्रहरी है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को निहित स्वार्थी कुचल रहे हैं। स्वतन्त्र-प्रहरी को चेतावनी दी जा रही है—

'खबरदार!
तुम्हारी तेजी
कुंद करने का इंतजाम
हमारे पास है।' – 'चेतावनी/अनिल राकेशी

कितने सुधार के भाषण पिलाते हैं राजनेता, मगरमच्छी आंसू रोते हैं। राष्ट्रीय-दिवस की शपथ यहां कुछ अर्थ तलाश रही है—

'या सरकारी मेहमानखाने के बड़े रसोइये का
जो हर राष्ट्रीय दिवस पर
शौर्य, शहादत, राष्ट्रीयता, सेवा त्याग—
किसिम किसिम की मछलियों की तलाश में
मछली बाजार की बदबू छानता फिरता है?
—'लास्ट पोस्ट/अनिल राकेशी?

और व्यंग्य कितना गहरा है—

अपनी बन्द मुट्ठी
प्रवेशी मुहाने में ठोंस देते हैं
और फिर कतार के साथ लग कर
कतार की कतार बहका देते हैं। —'अचंभा नहीं/रामदयाल नीरज'

इतना ही नहीं—

'पंचाग्नि धूनियों में समिधा डाल
उन्हें धधका कर अखण्ड रूप दे देते हैं
और मेरी सिद्धि की प्रसिद्धि करते
मेरे गीत अलापते हैं।' —अचंभा नहीं/रामदयाल 'नीरज'

कितना बड़ा फरेब है। औद्योगिक-करण से कितनी समस्यायें पनपी हैं। मनुष्य भौतिकता की धुन ने दास बना डाला है। मानसिक विकृति को दमित करने के लिए कभी अल्कोहल और कभी माण्ड्रेक्स में सन्तुलन का रास्ता निकाला जा रहा है। स्थिति हास्यस्पद कितनी दयनीय है—

'एक संदिग्ध रेस्तरां में
अपनी कुहनियों के नीचे का
तकिया भूल जाता है
वह खोजता है अंधेरे में चुराया गया
अपना बिस्तर।' —'अल्कोहल के प्रभाव में/श्रीनिवास श्रीकान्त'

काम की प्रताड़ना—

'और उस समय मुझे
कैबरे नर्तकी के नंगे जिस्म की याद आई
व्याहता प्रेमिका को पत्र लिखने का मूड़ बना,–
अपने से लड़ता दूसरा क्षण–
और व्याहता प्रेमिका की याद को
किसी लोहार की धधकती भट्ठी में झोंक
जब लौटूंगा
तो बिल उखाड़—उससे लड़ूंगा
जलता फौलाद छिड़कूंगा।' —'जब लौटूंगा/सुन्दर लोहिया'

कवि को पौरुष की तलाश है—

'दम तोड़ते
वक्त की शोर भरी आवाज
पंख कटे पक्षियों की
चिल्लाती जरुरतें भी
दम तोड़ती जा रही हैं।' —'तलाश/चतुर सिंह'

अस्तित्व को खतरा है, संकटबोध से कवि उदास है। मृत्यु का भय व्याप्त हो गया है—

'लगा एक क्षण में
नदी मुझे लील जाएगी
और फिर निर्विकार बहने लगेगी।' —'संकटबोध/पीयुष गुलेरी'

गहराते पानी में देखने से तो ऐसा होगा ही। परन्तु हम जो पीढ़ियों से भोग रहे हैं, उस व्यक्ति की चिन्ता में घुलती सहानुभूति—

अपने बैल का मृत शरीर ढोते-ढोते
मैं हो गया हूं बूढ़ा
और अपनी बांझ गाय की सोचते-सोचते
सूख गया है मेरी बीवी का दूध।' —'प्रतिवेदन/जिया सिद्दीकी'

ज्वलन्त प्रश्नों के उपरान्त अब और प्रतीक्षा करने का सबक देना चाहा है, जो देवलोक से उतर रहा है—लेकिन कौन ..... ?

'रात की कोख से
उतरेगा एक फरिश्ता और देखेगा
किसी आंख में नींद नहीं है
फिर भी कोई नहीं करता है
अगली सुबह का इन्तजार ।' —'उनींदी आंखों का गीत/अमिताभ'

अब और इन्तजार किया भी क्यों जाए। प्रेम गीत क्यों न गाए जायें, फिर तो इन्तजार नहीं रहेगा—

'मेरे मन के अंधियारे में। सिसक रहा था आशा का शव
तुम प्रकाश की अमर किरण सी
उसे दे गई चेतनता नव'

और फिर मन मरुस्थल में प्रकाश की किरण दौड़ गई, क्योंकि—

'तुम सहसा बरसी वर्षा सी',
—'आशा लगाई है जो तुमने आंसू उसे बुझा न सकेंगे/परमानन्द शर्मा

श्रद्धेय के प्रति समर्पण भी अपूर्व बन पड़ा है—

'फूल मैं लाता कहां से, शूल ही थे पास मेरे,
पद कमल पर भी तुम्हारे शूल मैंने बिखेरे .....'
—'आज, प्रतिभा, तनिक बोलो/परमानन्द शर्मा'

और अब उपालम्भ—

'जगती हंसी बसन्त खिला
पर मेरे अधर न खिल पाये......'
—'मैं पतझड़ का जीव मुझे कुसुमाकर का श्रृंगार न दो/परमानन्द शर्मा'

नास्तिकता की सीमा—

'चीख पुकारों की,
दुख-दर्दों की दुनिया में
पत्थर—
प्रभु का प्रतीक उचित ही है।'

निष्कर्ष में सिद्ध है कि प्रस्तुत संग्रह, सत्ताजनक असमानताओं, सामाजिक अन्याय भरी कुरूपता में राजनैतिक स्थिति को उजागर करने में सक्षम रहा है।

काव्य संग्रह सुन्दर है। सज्जा आकर्षक है, जो पाठक को सहसा अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं।

समीक्षक : अश्विनी कुमार अवस्थी,
द्वारा श्री भगवानदास अवस्थी,
मुख्य डाकघर पालमपुर (कांगड़ा)

शोक सन्देश

बड़े दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि हिमाचल कला-संस्कृति भाषा अकादमी के भूतपूर्व सचिव तथा भाषा एवं संस्कृति विभाग के सहायक निदेशक श्री हरिचन्द पराशर का दिनांक १६ जनवरी १६८० को शिमला में असामयिक निधन हो गया।

श्री पराशर प्रदेश के सुप्रसिद्ध साहित्यकार ही नहीं थे बल्कि अकादमी का संविधान तैयार करने तथा इसे व्यावहारिक रूप देने में भी उनका उल्लेखनीय योगदान रहा है। अकादमी परिवार दिवंगत आत्मा के प्रति हार्दिक सम्वेदना प्रकट करता है तथा स्वर्गीय पराशर के परिवार को इस आघात को सहन करने की शक्ति प्रदान करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है।

— सम्पादक

H.A.A.C.L. आर०एन० 28271/75

1. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि०प्र० द्वारा पत्राङ्क ई डी ऐन-एच (8)-6(3)1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

2. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परी महल, शिमला-9 द्वारा प्रसारित तथा 'नवीन प्रिंटिंग प्रेस', जिला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश) द्वारा मुद्रित।